गांधीजी—जैसा मैंने देखा

रङ्गनाथ दिवाकर

गांधीजी—जैसा मैंने देखा

रङ्गनाथ दिवाकर

अनुवादक

ठा० राजबहादुरसिंह

राजहंस-प्रकाशन
दिल्ली

प्रकाशक :
सुबुद्धिनाथ मंत्री,
राजहंस-प्रकाशन
दिल्ली

पहली बार : १६४६
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक :
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस
दिल्ली ३-४६

परिचय

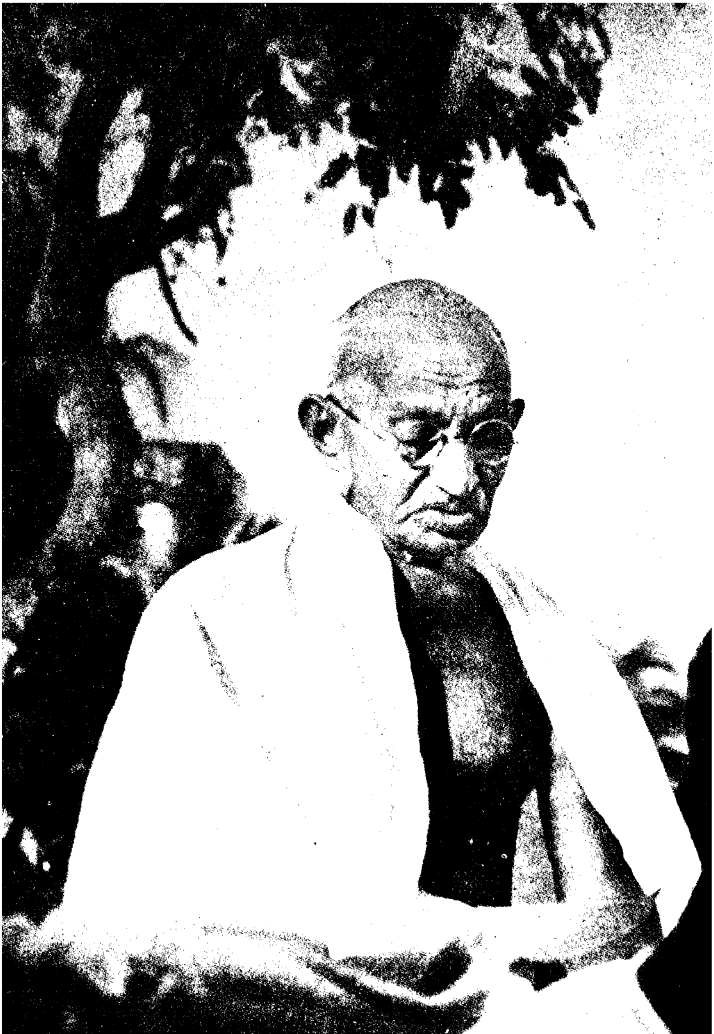
इस पुस्तक में कांग्रेस के आजीवन-भक्त श्री रङ्गनाथ रामचन्द्र दिवाकर ने गांधीजी के कुछ घनिष्ट और व्यक्तिगत चित्र देकर यह दिखाया है कि वे (गांधीजी) सुदूर क्षेत्रों में भी कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के इतने निकट किस प्रकार आ गये थे। लेखक ने गांधीजी के ध्येय और उपदेश को क्रियात्मक और व्यक्तिगत ढंग से समझाने की कोशिश की है। पाठक देखेंगे कि इसमें गांधीजी के साथ अपने व्यक्तिगत सम्पर्क और पत्र-व्यवहार का वर्णन तल्लीनतापूर्ण दिलचस्पी के साथ किया गया है। गांधीजी के अकृत्रिम व्यवहार से अजनबी भी यह अनुभव करते थे कि वे उनके अपने हैं। उनका हृदय उस समुद्र की भाँति था, जिसमें हजारों नदी-नाले जा मिलते हैं और जो प्रत्येक सहायक धारा के साथ एक-जैसे उछाह के साथ मिलता है।

३० जनवरी का दिन भारत के इतिहास में सबसे अधिक अन्धकारपूर्ण दिवस के रूप में जीवित रहेगा, किन्तु गांधीजी के लिए वह क्षण उनके जीवन का सर्वोत्तम अंश था। अपने ध्येय की सफलता और जीवन-भर के उपदेशों की सच्ची समझ के लिए गांधीजी इससे अच्छी मृत्यु की आकांक्षा नहीं कर सकते थे। हत्यारे ने गोली के बाद गोली चलाकर उनके कृश शरीर को संसार के दृश्य-पट से हटाकर एक ऐसी शक्ति को दूर कर देना चाहा था, जो उसके अपने काल्पनिक स्वप्न को पूरा करने में बाधक थी ; पर वह न समझ सका कि इस प्रकार

वह गांधीजी के जीवन-कार्य पर दैविक स्वीकृति की मुहर मात्र लगा रहा है।

एक भक्त अनुयायी के द्वारा उस महान् गुरु के शहीद होने की पहली बरसी के दिन अर्पित की गई इस श्रद्धांजलि-द्वारा पाठकों के मन पर यह प्रभाव पड़ेगा कि भौतिक शक्तियाँ उस चाव को कुचलने में असफल होती हैं, खासकर उस अवस्था में जब यह चाव गम्भीर प्रेरणा, उच्च आदर्श, भगवान् पर अमर श्रद्धा और जीवन के गौरव से उत्पन्न हुआ हो।

१८-१-४६ —वल्लभभाई पटेल



सबको सन्मति दे भगवान

भूमिका

मैं उन महात्मा (गांधी) की कुछ झाँकियाँ यहाँ देना चाहता हूँ, जो अब हमारे बीच नहीं हैं। अभी कुछ ही समय पहले तक, यह नैतिक प्रतिभा की महान् मूर्ति, इस धरती पर चलती-फिरती और हमारे बीच रहती थी। लगभग आधी सदी से अधिक समय तक, वह—विशाल जनसमूह की आत्मा—विवेक बुद्धि के रूप में सेवा करते और उसे सदा सचाई, न्याय और नैतिकता का पक्ष लेने के लिए प्रेरित करते रहे।

उनकी शक्ति उनकी बातों में नहीं; बल्कि उनके कार्यों में थी। उनके शब्दों को बल इसलिए मिला कि उनके कार्य गहन होते थे। वह देवोपम उच्चता को पहुँच गये; पर कभी अपनी मानवता का स्पर्श नहीं छोड़ा। वह उच्चतम रूप में आत्म-चेतना प्राप्त कर चुके थे; किन्तु फिर भी हद दर्जे के विनम्र बने रहे। उन्होंने भारतीय समाज को ऐसी प्रेरणा प्रदान की, जैसी इनसे पहले कोई नहीं दे सका था। लोग महात्मा के रूप में उनकी पूजा इसलिए करते कि वे जानते थे कि वह उन सबसे ऊँचे हैं; पर वह उन्हें बापू—पिता—के रूप में प्रेम करते थे, क्योंकि वह लोगों के निकट थे और उन तक सब की पहुँच थी।

शुरू से ही वह अपने उद्देश्य के प्रति सच्चे और ईमानदार थे। उन्होंने प्रेम के साधारण सिद्धान्त का एक नया अर्थ लगाया और उसे तपा कर सत्याग्रह का शस्त्र तैयार किया, जिससे बुराई के सभी तरह के परिहारकारी रूपों के विरुद्ध लड़ा जा सके। सचाई की

निरन्तर खोज, और बुराई के विरुद्ध प्रेम, सेवा और बलिदान के हथियारों-द्वारा अनवरत संघर्ष उनके सत्याग्रह का सार है। व्यक्तिगत मुक्ति से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने सामाजिक—सामूहिक उपाय की खोज की और सत्याग्रह के बल-विज्ञान का प्रयोग मानव-जीवन के सभी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों और क्रियाशीलताओं में करने की कोशिश की। उन्हें अहिंसात्मक शक्तियों के संगठन में विश्वास था। उनकी दृष्टि न तो कभी धुँधली पड़ी और न अहिंसा और प्रेम के मूल्य और शक्ति के प्रति उनका विश्वास डिगा। उनका रास्ता सदा उनके विवेक के विमल प्रकाश से आलोकित रहा। भगवान् और सचाई में अडिग विश्वास होने के कारण उनकी कार्यवाही सदा दृढ़ होती रही।

गाँधीजी ने अपने सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा है। मुझे उनका निकट-सम्बन्ध प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था। उन्हें अन्य किसी भी एक व्यक्ति की अपेक्षा आज के हिन्दुस्तान का निर्माता माना जाता है। मैं अपना अस्तित्व समाप्त होने अथवा स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाने से पहले अपने गुरु के प्रति अपने संस्मरणों को अंकित कर देना चाहता हूँ और ऐसा करते समय मैं अपने जीवन की उन घड़ियों में पहुँच जाता हूँ, जब मैंने प्रकाश और प्रेम की साक्षात् मानव-मूर्ति—उन गुरु के साहचर्य का स्पन्दन प्राप्त किया था।

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

१

शोकाच्छन्न संध्या

मुझे यह बात बिल्कुल असम्भव मालूम होती थी । जब मैंने पहले-पहल यह समाचार सुना, तब मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ । जब मैंने गांधीजी को फूलों से ढके, चिर-निद्रा में पड़े देखा, तब सचमुच मुझे अपनी आँखों पर भी विश्वास न हुआ। उनका शरीर छूट चुका था । उस अन्धे धर्मोन्मादी की घातक गोलियों ने उनका काम तमाम कर दिया था, जो मुश्किल से यह समझ सका होगा कि उसने कितना बड़ा नुकसान कर डाला है । हत्यारा बुराई की उन शक्तियों का हथियार बन गया था, जो उस समय भलाई की ताकतों पर विजय प्राप्त कर लेती प्रतीत हो रही थीं । मेरे सामने भगवान् के उस मानव का शव पड़ा था, जिसने अपने अन्दर मानवीय भाव के उच्चतम प्रयत्नों को मूर्तिमान् किया था और अपने द्वारा निम्नतम को भी विशुद्ध और उच्च बना दिया था। अपनी प्रेम की कीमियागरी के द्वारा उन्होंने मिट्टी के पुतले को आत्मा का आज्ञाकारी बनाकर जन-नायक और शूरवीर बना दिया था। आह ! क्या कोई और ऐसा महामानव जन्म ले सकेगा ?

३० जनवरी १६४८ की शाम को मेरे एक दोस्त एकाएक मेरे कमरे में आये। उनके चेहरे पर से सदैव की मुसकराहट गायब थी और

ऐसा दिखाई देता था, जैसे वह कद में आधे ही रह गये हों । उन्हें उस खबर का पक्का निश्चय नहीं था । उन्होंने हाँफते हुए मेरी ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा । मैंने भी उन्मत्त की तरह बिड़ला-हाउस और कांग्रेस के दफ्तर को टेलीफोन किया ; पर कोई जवाब न मिला । एसोसिएटेड प्रेस के दफ्तर से एक काँपती हुई, चिन्तित, करीब-करीब अस्वाभाविक आवाज़ ने मुझे फोन पर बताया—'गांधीजी को प्रार्थना के लिए जाते हुए गोलियाँ मारदी गईं । उनकी हालत बहुत खराब है । मैं समाचार का इन्तज़ार कर रहा हूँ ।' सोचने के लिए समय नहीं था । मैं मित्रों सहित एक मोटरकार में जा कूदा और बिड़ला-हाउस के लिए दौड़ पड़ा ।

जब हम बिड़ला हाउस पहुँचे, तब बिड़ला-हाउस को हज़ारों व्यक्तियों ने घेर रखा था । मुझे ऐसा लगा, मानों मैं विषाद की घनी राशि को पार कर अन्दर घुस रहा हूँ । जिस कमरे में गांधीजी को लिटाया गया था, उस तक पहुँचना आसान न था । उनके सुपरिचित चेहरे पर मृत्यु की शान्ति विराज रही थी । मैं कितने चाव से आशा कर रहा था कि उनके ओठ फिर हिलते, क्योंकि उनकी सरल मुसकराहट अभी बिल्कुल दूर नहीं हुई थी । उनका चेहरा खुला रखा गया था और सारा शरीर खादी में लिपटा हुआ था, जिस पर फूल चढ़ाये गये थे ।

कुछ लड़कियाँ, जो उनकी निकटतम शिष्याएँ थीं, उनके चारों ओर गोलाकार में बैठी थीं और शान्त-भाव से गीता-पाठ कर रही थीं । जब मैं अन्दर पहुँचा, तो मैंने ग्यारहवें अध्याय का पन्द्रहवाँ श्लोक सुना, जो इस अवसर के लिए बहुत ही उपयुक्त था । अर्जुन भगवान् के विराट् स्वरूप का दर्शन करके कहते हैं—"हे भगवान्, मैं आपके

शरीर में सभी देवों को और सृष्टि के सभी समूहों को, कमलासन पर विराजमान ब्रह्मा को, तथा सभी ऋषियों एवं स्वर्गीय जीवों को देख रहा हूँ।"

मैं थोड़ी देर वहाँ बैठा। मालूम नहीं कितनी देर तक उस कमरे में व्याप्त प्रार्थना-पूर्ण आत्म-विस्मृति के वातावरण में डूबा रहा।

जब मुझे अपना भान हुआ, तो मैंने यह जानने की कोशिश की कि यह सब कैसे हुआ और उस बड़े हाल में इधर-उधर भटकने लगा, जिसमें बेहद भीड़ थी। इस तरह मैं अनिच्छुक ओठों से इस घटना के समाचार संग्रह करने लगा। वहाँ कितने ही दोस्त थे; पर हमने एक-दूसरे से बहुत कम बात की और हमारा वह मौन, जो आँखों-से-आँखें मिलने और गहराई से देखने तक सीमित था, बोलने की अपेक्षा अधिक बोध-जनक था। हम सभी अपने को संज्ञाशून्य और असहाय अनुभव कर रहे थे।

उस शाम को सरदार पटेल ने बिड़ला-हाउस में गांधीजी से पूरे घण्टे-भर बात-चीत की थी। पाँच बजने से कुछ ही मिनट पहले वे दोनों एक-दूसरे से जुदा हुए थे। सरदार अपने निवास-स्थान को चले गये थे और गांधीजी प्रार्थना-भूमि के लिए रवाना हो गये थे। गांधीजी सदा की भाँति अपनी पोतियों—आवा और मनु—के कन्धों का सहारा लिये हुए जल्दी-जल्दी प्रार्थना-मंच की ओर जा रहे थे, जहाँ लगभग पाँच सौ भक्त नर-नारी उनका प्रवचन सुनने के लिए इकट्ठा हुए थे। जब वह मैदान में आये, तब भीड़ ने दोनों ओर सिमटकर उन्हें मंच पर जाने के लिए राह दी।

वह कुछ ही कदम आगे बढ़े थे कि शैतान के दूत ने रिवाल्वर निकालकर उन पर तीन गोलियाँ चलाईं। शीशे की गर्म गोलियाँ

उस आदमी के कोमल तन में घुस गईं, जिसने संसार में किसी को दुश्मन नहीं जाना था। उन्होंने भूले हुए हत्यारे की ओर करुणाभरी निगाह से देखा और अन्त में भगवान् का नाम लेकर गिर पड़े। वह ७८ वर्षीय सक्रिय और सशक्त मानव-शरीर, क्षण-भर में ढेर हो गया जिसने जीवन में सावधान शुश्रूषा प्राप्त की थी, जो उच्च अनुशासन का पालन करता था, और उस महाशक्तिमान् की दृढ़ इच्छा-शक्ति के अनुसार चलता था।

उन्हें उठाकर उनके कमरे में ले जाया गया; किंतु गोली लगने के आध घण्टे के अन्दर ही उनका शरीरान्त हो गया।

प्रार्थना-भूमि पर बड़ी घबराहट छा गई। हत्यारे को वहीं पकड़ लिया गया और भीड़ को हटा दिया गया। जल्दी ही सारी दिल्ली की सभी दिशाओं से बिड़ला-हाउस की ओर भीड़ का ताँता बँध गया। इस भीड़ को भीतर पहुँचने से रोकना, सचमुच बहुत कठिन था। पं० जवाहरलाल ने भीड़ को सम्बोधन करते हुए भावुकतापूर्ण शब्द कहे; पर उनका असर थोड़े समय तक ही रहा। जब बापू का शव पहली मंजिल पर ले जाकर, जनता की दृष्टि के सामने रखा गया, तो जनता उनके अन्तिम दर्शन करके धीरे-धीरे हटी।

सरदार पटेल वहाँ सब से पहले पहुँचे थे। पण्डित जवाहरलाल, अन्य मन्त्रियों और सपत्नीक लार्ड माउण्टबेटन तथा सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को, भीड़ चीरते हुए अन्दर आना पड़ा। अपने चेहरे पर असीम कष्ट लिये, गांधीजी के सबसे छोटे बेटे देवदासजी और गांधीजी के सेक्रेटरी श्रीप्यारेलाल भी इसी प्रकार पहुँचे। अन्त्येष्टि-क्रिया के बारे में उन सब की विधि-रहित मीटिंग हुई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि यह क्रिया कब, किस रूप में और किस कार्यक्रम के साथ

सम्पन्न होनी चाहिए। जब उसका अन्तिम निर्णय हो गया और लगभग ११ बजे रात को भीड़ कम हुई, तब मैं भी वहाँ से अपने निवास-स्थान को लौटा।

मैं अंधेरे में से बीच-बीच के प्रकाश-स्तम्भों से होकर गुजरता हुआ, स्वगत बड़बड़ाता जा रहा था—"विधि की गति सचमुच विलक्षण है। भलाई और बुराई की दौड़ क्या वास्तव में इतनी बराबरी की है कि भलाई की विजय होती नहीं प्रतीत होती ? क्या मानव-जाति अपना सर्वोत्तम रक्त बहाये बिना कभी प्रगति नहीं कर सकती ? क्या सफल धार्मिक जीवन का सब से अच्छा अन्त बलिदान के रूप में ही होता है ? क्या सच्चे आदमी के बलिदान को ही सचाई की विजय समझा जाता है ? क्या नश्वर शरीर के पृथक् हो जाने पर ही आत्मा को मुक्ति मिलती है ?

"अथवा हो सकता है कि पौधे को जीवित रखने के लिए बीज का अपने-आपको नष्ट करना अनिवार्य होता हो--शिशु को पैदा करने के लिए माता को यंत्रणा के कारण मृत्यु के निकट तक पहुँच जाना पड़ता हो ? उस सन्त की मृत्यु का रहस्य क्या है, जो मुसकराते हुए मौत की यंत्रणा का आलिंगन करता है ? उस शहीद को कौन सहारा देता है, जो अपनी फाँसी के तख्ते की ओर इस प्रकार जाता है,जैसे कोई विवाह के लिए जा रहा हो ? यह ठीक ही कहा गया है कि धर्म के बीज को शहीदों के रक्त से सींचना होता है—वास्तव में विधि की गति विलक्षण है !"

और इस महान् शहीद ने अपनी मृत्यु के बारे में क्या सोच रखा था और उसने भूतकाल में अपने हत्यारों के बारे में क्या समझ रखा था ?

इस व्यक्ति ने जिस तरह अनेक बार अपने जीवन के साथ जुआ खेला था, उसी तरह मृत्यु के साथ भी खेल खेला। उनके चौदह प्रसिद्ध उपवासों में तीन तो इक्कीस-इक्कीस दिन के थे और तीन 'आमरण अनशन'। वह दोनों लोकों से करीब-करीब विलग रहे—उनके छोर पर वे आनन्द का अनुभव करते रहे।

न यही विचार था कि वे अपने ही लोगों में अपने एक अपरिचित के हाथों मारे जायँ। उनका जीवन समाप्त करने के लिए यह आख़ीरी कोशिश नहीं थी। दक्षिण-अफ्रीका में उनके एक अनुयायी पठान ने, जो बाद में भी उनका अनुयायी बना, उन्हें इसलिए मारते-मारते क़रीब-क़रीब मुर्दा बना दिया कि उसके ख़याल में महात्मा-जी ने प्रवासी हिन्दुस्तानियों को धोखा दिया था। पर गांधीजी ने उसके विरुद्ध कानूनी शिकायत तक करने से इन्कार कर दिया। हिन्दुस्तान में १९३३–३४ ई० में जब वे हरिजनों के लिए दौरा कर रहे थे, तब पूना में किसी कट्टर-पन्थी हिन्दू ने उन पर इस विचार से बम फेंका था कि वे हिन्दू-धर्म को चोट पहुँचा रहे हैं। अन्तिम प्रहार के पहले २० जनवरी १९४८ ई० को भी प्रार्थना-भूमि के पीछे एक बम फेंका गया था। गांधीजी ने अपनी प्रार्थना इस प्रकार अबाध गति से चालू रखी, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

दूसरे दिन प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने गये दिन की घटना का हवाला दिया। उन्होंने कहा कि प्रार्थना के बाद तक उन्होंने यह नहीं समझा कि बम उनके लिए फेंका गया था। यदि वह इस धमाके से शिकार हो जाते, तो उस प्रहारकर्त्ता को प्रमाण-पत्र मिलता। यह कह कर वह मुसकराये पर उस बुराई करने वाले के प्रति उनके मन में क्रोध और ईर्ष्या के भाव नहीं आये। उन्होंने बम

फेंकने वाले को केवल एक बहका हुआ या पथ-भ्रष्ट युवक कहा, जिसे वह प्रेम और प्रार्थना के द्वारा जीतने और स्वमत का बना लेने की आशा रखते थे। इसीलिए उन्होंने पुलिस के इन्स्पेक्टर-जनरल को आदेश किया था कि उस बम फेंकने वाले युवक को छोड़ दिया जाय, जो गिरफ्तार कर लिया गया है।

'बुराई के बदले भलाई दो' गुजराती-कवि श्यामभट्ट के पद्य से बचपन में उन्होंने यह सीखा था। उस पद्य को याद करके एक बार उन्होंने कहा था—'मैं अपने दुश्मन की जान बचाने के लिए उसके घाव से साँप का विष भी मुँह से चूस लूँगा।'

इस प्रकार का साधु पुरुष, उस दुर्भाग्यपूर्ण संध्या को एक नृशंस मानव के आक्रमण का शिकार हो गया—एक ऐसे धर्मोन्मादी का, जो उनका स्वदेशवासी, स्वजातीय और स्वधर्मी था। विधि सचमुच विलक्षण है!

मैं अन्तिम बार गांधीजी से उस दिन मिला था, जिस दिन २८ जनवरी (१९४८) को सुबह १० बजे कांग्रेस-विधान-समिति उनसे मिली थी; अर्थात् उनकी हत्या से केवल दो दिन पहले हम उनके पास एक घण्टा से अधिक समय तक रहे। पर, इस बात को बाद में कहूँगा।

मैं उनके जीवन के इस अन्तिम अध्याय को अधिक लम्बा न बनाऊँगा। बल्कि मैं उस अवसर की बात कहूँगा, जब मैंने उनकी पहली झांकी ली थी।

***

२

राज-भक्त गांधी

यह १६१८ के मई मास की बात है। बीजापुर में बम्बई प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन श्रीविट्ठलभाई पटेल के सभापतित्व में होने वाला था। साथ ही छूत-छात-निवारण के लिए एक दूसरी कांफरेंस भी होने वाली थी। स्वागतकारिणी के अध्यक्ष श्री श्रीनिवासराव कौजल्गी ने उन दोनों सभाओं में गांधीजी को शामिल होने का निमन्त्रण दे रखा था। उन्होंने इस शर्त पर उसे स्वीकार कर लिया था कि उन्हें भाषण देने पर मजबूर न किया जाय।

गांधीजी १६१६ में दक्षिण अफ्रीका से वहाँ के प्रवासी भारत-वासियों के अधिकारों के लिए, कामयाब सत्याग्रह-आन्दोलन करके लौटे थे। किन्तु उनसे तथा उनकी कार्यविधि से बहुत कम हिन्दुस्तानी परिचित थे। यद्यपि उस समय के सब से चतुर राजनीतिज्ञ श्रीलोक-मान्य तिलक ने अपने इष्ट-मित्रों से पहले ही कह दिया था कि गांधीजी उन सब को मात दे जायँगे, तथापि अभी उन्हें अपना स्थान बनाना था। हिन्दुस्तान में, गांधीजी ने अपने सत्याग्रह का प्रयोग चम्पा-रन (बिहार) के किसानों का वहाँ के नीलवाले यूरोपियन गोरे व्यापारियों के क्रूर शोषण के विरुद्ध कामयाब आन्दोलन चलाने में किया।

बीजापुर कांफरेंस में, मैं एक स्वयंसेवक बना था और मेरी ड्यूटी प्रधान के कैम्प में, शहर के बाहर एक बंगले पर, जहाँ गांधीजी

ठहरे थे, लगाई गई थी। उन दिनों, गांधोजी की पोशाक काठिया-वाड़ी बनियों-जैसी होती थी। वे सिर पर भारी मुँड़ासा बाँधा करते थे। वह जब भी, और बाद में हमेशा, तीसरे दर्जे में, एक स्वयंसेवक के साथ, नंगे पाँव, बिना बिस्तर के, सफ़र किया करते थे। वह अपने साथ भुनी मूँगफली, गुड़ और खजूर रखते और ज़रूरत होने पर उन्हें ही खाते थे। वह अपने कपड़े खुद ही धोते थे। हाँ, जब कभी समय कम हो, तभी उनके साथियों को उनके कपड़े धोने का सौभाग्य मिला करता था। नहाने-धोने, नाश्ता या अपने वादे या समय पर काम करने के लिए उन्हें याद-दिहानी की ज़रूरत न होती थी। तब, और बाद में हमेशा, वे अपनी घड़ी के शासन में चलते थे। निश्चित् समय पर उन्हें बुलाने की ज़रूरत न थी और जाने के लिए सवारी इत्यादि की परवा न करके वे तेज़ी से पैदल ही चल पड़ा करते थे।

पहले ही दिन, स्वयंसेवकों के कप्तान ने, स्वागताध्यक्ष के किसी अपमानजनक सलूक के विरुद्ध हड़ताल का ऐलान कर दिया। मैं दुविधा में पड़ गया। कप्तान की आज्ञा का पालन करूँ, या माननीय मेहमानों की सेवा करता रहूँ? मैंने भी हड़तालियों में शामिल होना तय किया; लेकिन उन मेहमानों को खाना खिलाने और हड़ताल के बारे में एक घण्टा पहले सूचना दे देने के बाद।

जब मैंने अपने इस फैसले के लिए गांधीजी से माफ़ी माँगी, तो वे मुसकराते हुए बोले कि मुझे ऐसे भरोसा न करने लायक स्वयंसेवक दरकार नहीं। वे कहने लगे कि अपने लिए मैं खुद ही सेवक हूं। इस प्रकार मैंने अपने मेहमानों में गांधीजी को अनोखा ही पाया।

कांफरेंस में लोकमान्य तिलक, श्रीपटेल, प्रधान और दूसरे राष्ट्रवादियों ने यह विचार प्रकट किये कि हम इस शर्त पर फ़ौजी भर्ती का

समर्थन कर सकते हैं कि युद्ध के बाद, अँग्रेज़ी सरकार हिन्दुस्तान को स्वराज देने का वचन दे। एक गांधीजी ही इस मत के ख़िलाफ़ थे। वे अँग्रेज़ी सरकार को खुली मदद देने के पक्ष में थे। गांधीजी की राज-भक्ति तब तक बनी हुई थी और जलियाँवाला बाग़ के हत्याकांड के बाद ही उनकी आँखें खुली थीं। वाइसराय द्वारा आमंत्रित एक युद्ध-कांफरेंस में भी वह शरीक हुए थे और फ़ौजी भर्ती का उन्होंने समर्थन किया था।

हाँ, तो प्रधान के बँगले पर भी बड़ा तीव्र वाद-विवाद हुआ। गांधीजी ने अधिक सुना और कम बोले। दूसरों ने उन्हें अपने पक्ष में लाने की चेष्टा की; किन्तु वह टस-से-मस न हुए।

अन्त में, कुछ मित्रों ने यह कहा कि युद्ध जीतने के बाद अँग्रेज़ और भी ज़ालिम बन जायँगे। उन्होंने यह भी पूछा कि आख़िर हिन्दुस्तानियों की ऐसी कौन-सी नैतिक ज़िम्मेदारी है कि वे अँग्रेज़ों की मदद करें? हो सकता है कि वही सिपाही, जिन्हें हम भर्ती करायँ, बाद में अँग्रेज़ों-द्वारा हम पर ज़ुल्म कराने में इस्तेमाल किये जायँ। गांधीजी ने शांति से सब सुना और उत्तर दिया—'हम साम्राज्य के संरक्षण में हैं, अतः हमें मदद करनी ही चाहिए। हमें, स्वराज प्रदान किये जाने की समस्या को साम्राज्य की रक्षा की समस्या से नहीं मिला देना चाहिए। अपने एक क़ानून-संगत अधिकार की प्राप्ति के लिए भी, हमें अपने विरोधियों की कठिनाइयों से लाभ नहीं उठाना चाहिए। आपको भय है कि वही रँगरूट, जिन्हें हम भेजेंगे, कहीं हमारे ही ख़िलाफ़ न भिड़ा दिये जायँ। मैं कहता हूँ कि यदि युद्ध के बाद अँग्रेज़ों ने हमारे साथ बदसलूकी की, तो प्रत्येक रँगरूट से मैं अँग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करवा दूँगा।' इस उत्तर के बाद वाद-विवाद ख़त्म हो गया। सभी जानते थे कि गांधीजी अपने निश्चय

से कभी डाँवाँडोल नहीं हुआ करते।

दूसरी छूत-छात-निवारिणी कांफरेंस में सभापति के भाषण के बाद गांधीजी से भाषण की प्रार्थना की गई। धीरे-धीरे मंच पर चढ़कर उन्होंने उपस्थित भीड़ की ओर देखकर पूछा—'क्या आप में कोई अछूत है ?' यह बड़ा उल्टा-सा सवाल था। जवाब में एक भी हाथ न उठा। फ़ौरन गांधीजी ने कहा कि ऐसी सभा में वह भाषण नहीं करेंगे।

ऐसी फटकार से सारी उपस्थित जनता और सब प्रबन्धकर्त्ता स्तब्ध रह गये।

* * *

३

विद्रोही गांधी

गांधीजी ने अपने सत्याग्रह के नये अस्त्र का प्रयोग देश में प्रथम बार अप्रैल १६१६ में किया। और यह सत्याग्रह आंदोलन रौलट-एक्ट पास किये जाने के विरोध में आरंभ किया गया। गांधीजी ने कुछ गिने-चुने दमनकारी क़ानूनों; यथा—प्रेस-एक्ट इत्यादि की अवज्ञा करने का जनता से अनुरोध किया। ६ अप्रैल को हिन्दुस्तान-भर में लाखों मनुष्यों ने हड़ताल की और जल्से करके रौलट-एक्ट के ख़िलाफ़ शान्तिमय रोष प्रकट किया। पूरा एक हफ्ता, 'नैशनल वीक आफ़ प्रोटेस्ट' के नाम से इस विरोध के लिए अलग कर दिया गया। उन दिनों लोकमान्य तिलक इंग्लैण्ड में वैलेन्टाइन शिरोल के ख़िलाफ़ मान-हानि का मुक़दमा लड़ रहे थे। उन्होंने अपने मित्रों को गांधीजी का समर्थन करने को लिखा।

पुराने 'वैध विरोधी आन्दोलन' का स्थान अहितकर क़ानूनों की निर्भीक, शांतिमय और खुली अवज्ञा ने ले लिया और इस विरोध के परिणाम-स्वरूप सब ज़ुल्म सहने के लिए जनता तैयार हो गई।

इसी आन्दोलन के समय में जलियाँवाला बाग़ का हत्याकांड हुआ। हज़ारों शांतिमय निहत्थे नर-नारी वहाँ एक विरोधी जल्सा कर रहे थे कि उन पर गोरे सिपाहियों ने गोलियों की बौछार की और गोली

चलाना तभी बन्द किया, जब गोलियाँ ही ख़त्म हो गईं !

अब गांधीजी का विद्रोह पूरी तरह सजग हो उठा था। वह साम्राज्य, जिसने जलियाँवाला बाग़ जैसा क़त्ले-आम किया हो और उसके लिए रोष प्रकट करने की ज़ाहिरदारी तक न करने दी हो, जीवित रहने का अधिकार नहीं रखता। ऐसे साम्राज्य को, अपनी प्रजा से राज-भक्ति तलब करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं। अतः, प्रजा भी साम्राज्य के प्रति किसी नैतिक बन्धन में नहीं बँधी रह सकती।

१ अगस्त १६२० को, गांधीजी ने सरकार से असहयोग का अखंडनीय निश्चय किया। उसी दिन 'भारतीय हलचल के पिता' श्री लोकमान्य तिलक का देहान्त हुआ था, जिन्हें हिन्दुस्तान का सब से बड़ा वैध आन्दोलनकर्त्ता कहा जाता है।

तिलक का देहान्त बम्बई के 'सरदार गृह' में हुआ था। उनकी अर्थी के साथ हज़ारों नर-नारी थे। तिलक ब्राह्मण थे; अतः उनके कुछ इष्टमित्रों तथा रिश्तेदारों ने यह चाहा कि अर्थी को केवल ब्राह्मण कंधा दें। गांधीजी जन्म से बनिया थे। जब वे झुककर अर्थी को उठाने लगे, तो किसी ने उन्हें रोकने की कोशिश की। गांधीजी एक क्षण रुके, मामले को समझा और आँखों में एक बाध्य करने वाली ज्योति भरकर बोले—'सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जात नहीं जानते !' इतना कहकर वह फिर झुके और अर्थी उठाने से रोकने का साहस फिर किसी को नहीं हुआ। उनके बाद मुसलमानों ने भी चौपाटी पहुँचने तक अनेक बार अर्थी को कंधा दिया। ज़ोर की बारिश होते रहनेपर भी, मानो सारा बम्बई शहर चौपाटी पर जमा हो गया था। उस ऐतिहासिक अवसर के स्मारक-स्वरूप आज भी चौपाटी की रेती पर,

जहाँ तिलक का अन्त्येष्टि-संस्कार किया गया था, उनकी एक धातु की मूर्त्ति शोभायमान है।

गांधीजी ने अनुभव किया कि अँग्रेज़ सरकार की मशीनरी का संचालन अधिकतर हिन्दुस्तानी कर रहे हैं। यदि यही हिन्दुस्तानी हाथ खींच लें, तो मशीन का चलना अवश्य बन्द हो जायगा। अतः उन्होंने इसी उद्देश्य की प्राप्ति की कोशिशें शुरू कर दीं। सितम्बर १६२० में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन किया गया, जिसमें गांधीजी का 'अहिंसात्मक असहयोग' कहा जाने वाला प्रोग्राम पास हुआ।

गांधीजी कोरे आन्दोलन करने वाले ही नहीं थे, वह निर्माण-कार्य में भी बड़े प्रतिभाशाली थे। जहाँ उन्होंने स्कूलों, कालेजों, अदालतों, विलायती कपड़े और माल के बॉयकाट का निषेधात्मक काम शुरू किया, वहाँ उन्होंने जनता के सामने कातने, राष्ट्रीय स्कूल खोलने, तिलक-स्वराज-फंड के लिए १ करोड़ रुपया जमा करने, और कॉंग्रेस के सदस्य भर्ती करने के निर्माण-कार्य का प्रोग्राम भी रखा। अपनी कार्य-पद्धति के प्रचारार्थ उन्होंने हिन्दुस्तान-भर का ज़बरदस्त दौरा करके जनता से अनुरोध किया कि यदि वह उनके प्रोग्राम पर अमल करे, तो स्वराज केवल एक ही साल में मिल सकता है।

अक्तूबर १६२० में जब गांधीजी धारवाड़ स्टेशन पर रेल से उतरे, तब धोती के ऊपर केवल कुरता पहने थे और उनकी लम्बी-चौड़ी पगड़ी की जगह सिर पर एक टोपी थी, जो 'गांधी टोपी' के नाम से आज भी सम्मानित है। शहर में एक सार्वजनिक सभा हुई। दुर्भाग्यवश किसी मूर्ख के पत्थर फेंकने से एक आदमी के सिर में

चोट आ गई और कुछ बूँद खून भी निकल आया। श्रोताओं में थोड़ी-सी बेचैनी फैली; किन्तु गांधीजी शांत रहे और श्रोताओं ने उनका भाषण बड़े धीरज और शांति के साथ आख़िर तक सुना। गांधीजी ने अपना वक्तव्य बड़ी शांति से नपे-तुले शब्दों में कहा। उनका भाषण जोश-भरे वाक्यों या अलंकृत भाषा और भावपूर्ण शब्दों में नहीं होता था। उनके भाषणों का असर इसलिए होता था, कि वह एक ऐसे व्यक्ति के हृदय से निकलते थे, जिसमें गहरी देश-भक्ति, जनता का प्यार, निष्कपटता, नम्रता, शुद्ध चाल-चलन और निर्भीक सत्यवादिता भरी थी और सब से बढ़कर इसलिए भी कि गांधीजी जिस बात का प्रचार करते थे, ख़ुद भी उस पर अमल करते थे।

इस सभा के बाद, पूरे एक घण्टे तक गांधीजी ने अस्पृश्य आंदोलन के कुछ नेताओं से परामर्श किया। क्या बातें हुईं, यह तो मालूम नहीं, किन्तु गांधीजी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि ब्राह्मणों द्वारा जो भी 'पाप' हुए हों, अ-ब्राह्मणों का राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहना किसी तरह न्याय-संगत नहीं हो सकता।

अगले दिन गांधीजी हुबली पहुँचे। जहाँ मैं भी उनके निकट-सम्पर्क में आया। हममें से कुछ का इरादा एक राष्ट्रीय विद्यालय चलाने का था और मित्रों का आग्रह था कि मैं उस विद्यालय में पढ़ाऊँ। आपस की बातचीत के लिए गांधीजी ने मुझे बुलवाया और कहा कि मैं उस स्कूल में पढ़ाने का फ़ैसला फ़ौरन करदूँ। मैंने कहा, मन तो मानता है, किन्तु शरीर में बल नहीं। किन्तु उनकी बात भला कोई टाल सकता था! यद्यपि उस समय मैंने गांधीजी को कोई वचन नहीं दिया था, तथापि अगले ही महीने हमने धारवाड़ में एक राष्ट्रीय स्कूल खोल डाला, जिसमें मैं भी पढ़ाने लगा।

गांधीजी दूसरे स्थानों का दौरा करने चले गये, किन्तु, उनकी केवल एक दिन की झाँकी ने जनता में एक नई रूह फूँक दी। सैकड़ों विद्यार्थियों ने स्कूल, कालेज और सैकड़ों वकीलों ने वकालतें छोड़ दीं। हज़ारों लोगों ने अपनी श्रद्धांजलि धन के रूप में तिलक-स्वराज फंड को दी। विलायती कपड़े और शराब का बॉयकाट ज़ोरों से चलने लगा। धारवाड़ और हुबली दोनों जगहों में राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किये गये।

* * *

४

युद्ध की तैयारी

दक्षिण-अफ्रीका से लौटने पर १६१६ में गांधीजी ने गुजरात के मुख्य नगर अहमदाबाद में एक सत्याग्रह-आश्रम स्थापित किया था। शहर से दो मील पर, साबरमती नदी के किनारे, यह मामूली से कुछ झोंपड़ों का एक झुंड था, जहाँ गांधीजी अपने इने-गिने साथियों के साथ रहा करते थे। यह आश्रम राजनीतिक आन्दोलन का केन्द्र पहले ही बन चुका था, और अब समस्त भारत के लिए तीर्थ-स्थान भी बन गया।

सौभाग्य से इत्तिफ़ाक़ भी ऐसा हुआ कि गांधीजी का आश्रम ऋषि दधीचि के एक पुराने मन्दिर के साथ सटा हुआ बना है। पौराणिक कथा है, कि दधीचि ने महान् त्याग किया था। देवराज इन्द्र ने जब देखा कि असुरों पर विजय नहीं पाई जा सकती, तो वे ऋषि दधीचि के पास पहुँचे और उनके शरीर की एक पसली के लिए याचना की, जिससे कि वह ऐसा अस्त्र बना सकें, जो असुरों को परास्त कर दे। दधीचि ने इन्द्र की याचना स्वीकार कर ली और लम्बा उपवास करके अपने प्राण त्याग दिये। तब इन्द्र ने उनकी एक पसली प्राप्त की, और उससे वह अस्त्र, जिसे वज्र कहते हैं, बनाया और युद्ध में अपने शत्रुओं को मार भगाया।

जब गांधीजी अपने आश्रम के लिए यह स्थान चुन रहे थे, तब ऋषि दधीचि के त्याग की कथा उन्हें सुनाई गई थी और उन पर इसका बहुत असर हुआ था। भला इससे ज्यादा और खुशी की बात उनके लिए क्या हो सकती थी, यदि वे भी उसी तरह अपने प्राण त्याग सकते!

दिसम्बर १६२० के नागपुर-अधिवेशन के बाद 'अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन' बराबर एक साल तक चल चुका था। हज़ारों कांग्रेस-कार्यकर्ता जेलों में बंद थे। पंजाब और बंगाल की स्वयंसेवक-संस्थाएं अवैध घोषित की जा चुकी थीं। कलकत्ता वालों ने प्रिंस आफ़ वेल्स के आगमन पर स्वागत-समारोह का सफल बहिष्कार कर के दिखला दिया था। बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता श्रीचित्तरंजन-दास को कैद कर लिया गया था। जब अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब गिरफ्तार हुए कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की संख्या ४० हज़ार से ऊपर पहुँच चुकी थी।

हम सब दो-एक दिन पहले ही अहमदाबाद पहुँच गये थे; ताकि आश्रम और राष्ट्रीय विद्यालय को भलीभाँति देख सकें। हम गांधीजी की सायंकालीन प्रार्थना में भी शामिल हुए। उनका कुर्ता, टोपी, धोती, सब गायब थे। बस दुबले-पतले नंगे बदन पर कस कर बँधी हुई एक लंगोटी हो रह गई थी। गांधीजी को विश्वास हो गया था, कि इस हालत में, जब कि लाखों हिन्दुस्तानी नंगे रहते हैं, अधिक वस्त्र पहनना पाप है। आंध्र-प्रान्त के दौरे में उनको दरिद्रता के जो भयानक दृश्य देखने को मिले थे, उनसे उन्हें यक़ीन हो गया था कि कम-से-कम कपड़ा बदन पर रख कर, शेष सब त्याग देना चाहिए।

गांधीजी एक ऊँचे आसन पर नदी की ओर मुँह किये बैठे थे और हम सब उनके सामने रेत पर। हमारी संख्या कोई एक सौ से अधिक ही रही होगी। गम्भीर प्रार्थना और गीता-पाठ के बाद, गांधीजी ने उस दिन की घटनाओं की चर्चा की। श्री सी० आर० दास समेत बंगाल में बहुत-सी गिरफ्तारियाँ हुई थीं। उन्होंने कहा कि यह तो बधाई देने का अवसर है। आखिर हम चाहते क्या थे? आत्म-बलिदान से मामला सुलझाना, यही न? तो फिर मनचाही चीज़ मिलने पर दुःख क्यों? दुःख-दर्द महसूस करने का मतलब तो यह हुआ कि हम बलिदान करने को तैयार नहीं, या फिर हम पर कठोरता करने वालों के प्रति हमारे दिलों में घृणा भरी है। गांधीजी ने अनुरोध किया कि हम जिस कष्ट सहने को आगे बढ़े थे, उसके मिलने पर हमें उसका स्वागत करना चाहिए और मनो-मालिन्य के बिना या कष्ट देने वाले के प्रति किसी प्रकार की नफ़रत किये बिना उसे शांतिपूर्वक, धीरज से सहना चाहिए।

कांग्रेस-अधिवेशन का समारोह बड़ा ही सादा था। ३० हज़ार मनुष्यों के लिए एक विशाल पंडाल बना था, जिसमें एक ऊँचा मंच था, और जिसके बीच में चौकी बिछी थी। प्रतिनिधियों को इस मंच के चारों ओर बैठना था और दर्शकों के लिए उनके पीछे जगह थी।

कांग्रेस-अधिवेशन वाली जमीन के पीछे की ओर अहमदाबाद नगर था। एक साल का जोश-भरा असहयोग-आंदोलन, स्वयंसेवक-संस्थाओं पर सरकारी-प्रतिबंध, लगभग चालीस हज़ार व्यक्ति जेलों में और देश में उफान। सवाल था—'आगे क्या हो'? मुख्य प्रस्ताव में, जो गांधीजी ने उपस्थित किया था, मौ० हसरत मोहानी ने संशोधन रखा। उन्होंने

हिन्दुस्तान का ध्येय पूर्ण स्वराज घोषित किये जाने पर ज़ोर दिया। किन्तु गांधीजी ने छोटे-से भाषण में उसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि मौलाना का दिल तो सही है; किन्तु दिमाग सही नहीं। बस, एक क़दम से ज्यादा आगे बढ़ने को वह तैयार नहीं थे। गांधीजी ने अपने को अमली आदर्शवादी बतलाते हुए कहा कि उनका सिर भले ही आकाश में उड़ता रहे; किन्तु उनके पाँव निश्चय ही धरती पर जमे रहने चाहिएं।

गांधीजी को आश्चर्य हो रहा था कि जहाँ सरकार ने उनके हज़ारों साथियों को जेलों में बंद कर दिया है, वहाँ असहयोग के असली प्रवर्त्तक को हाथ तक नहीं लगाया! उन्होंने कहा कि उनके एक-एक नायकों को गिरफ्तार करके सरकार उनके पर काटती जारही है; मगर उन्हें छूती तक नहीं। जो हो, उनकी आग तो सरकार बुझा नहीं पायेगी, क्योंकि उनका समर्थन आम जनता कर रही है, न कि वे थोड़े-से शिक्षित सज्जन, जो केवल उनके प्रचार के साधन बने हुए हैं।

बंगाल और पंजाब की स्वयंसेवक संस्थाओं पर प्रतिबंध को गांधीजी ने सरकार की चुनौती करार दिया और कांग्रेस के सामने फ़ौरन ५० हज़ार अहिंसावादी सत्याग्रही स्वयंसेवक भरती करने का प्रस्ताव रखा। यह संस्था सविनय अवज्ञा करने वाली अनुशासित फ़ौज के केन्द्र का काम करेगी। 'हमें संगीनों के सामने और गोलियों की बौछार में आगे बढ़ना होगा!' यह था उनके अहमदाबाद-कांग्रेस में दिये गये भाषण का सार।

गांधीजी ने स्वयंसेवक की शपथ का भी मसविदा तैयार किया, जिसके अनुसार स्वयंसेवक को मन, वचन और कर्म से

अहिंसा पर अमल करना था। कुछ मित्रों ने मन का अहिंसा-पालन बहुत कठिन बतलाया और कहा, ऐसी शपथ, जिसमें यह शर्त हो, बार-बार टूटती रहेगी। गांधीजी को ऐसी आपत्तियों के सामने झुकना पड़ा और केवल 'वचन और कर्म' से अहिंसावादी रहना ही पास हुआ।

एक तरफ़, गांधीजी सार्वजनिक भद्र अवज्ञा के लिए सारे देश को तैयार कर रहे थे और दूसरी ओर उनका मन बारडोल', गुजरात के एक ताल्लुके में, ज़ोरदार आन्दोलन चलाने के मन्सूबे बाँध रहा था। क्योंकि गांधीजी ने अनुभव कर लिया था, कि 'अहंकार के आसन पर बैठे हुए शासन' का विरोध, आख़ीरी दम तक करना होगा।

कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त होते ही मैं गांधीजी से उनके तंबू में मिलने गया, क्योंकि मुझे उनसे बात करने का मौक़ा ही नहीं मिला था। उस एक साल में मेरे साथ बहुत कुछ गुज़र चुकी थी। हम लोगों को 'धारवाड़ शूटिंग केस' में उलझा कर क़त्ल, ख़ून और लूट का मुल्ज़िम बनाया गया था। मेरे २३ सहकारियों को, जो सब-के-सब उत्तम कांग्रेस-कार्यकर्ता थे, लम्बी-लम्बी क़ैद की सज़ाएं दी जा चुकी थीं। कितने दुःख से हमने देखा था कि पुलिस के भय से, हमारे कितने ही पड़ोसियों ने आगे बढ़कर हमारे ख़िलाफ़ झूठी गवाहियाँ दी थीं। मुझे बरी कर दिया गया था; किन्तु कांग्रेस में शामिल होने को चलते समय, राजद्रोह के इल्ज़ाम में मेरे नाम गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया गया था।

मैंने अपने नाम जारी हुए वारंट का ज़िक्र गांधीजी से भी किया। उन्होंने मज़ाकिया ढंग से कहा—भाई, तुम भाग्यशाली

हो ! हमारे भाग्य में वारंट कहाँ ? इस पर मैंने कहा, कि शायद, पहले वे हमीं को जेल में भेजने का बन्दोबस्त कर रहे हैं। गाँधीजी और भी हँसे और विदाई से पहले आशीर्वाद दिया।

मैं जनवरी १९२२ के पहले सप्ताह में धारवाड़ पहुँचा और एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए गिरफ्तार कर लिया गया।

* * *

५

सीखचों के पीछे

१६२२ के शुरू में, कर्नाटक के हम ७-८ कार्यकर्त्ता, राजद्रोह के जुर्म में यरवदा-जेल में सज़ा भोग रहे थे। हमें उन अलग-अलग कोठरियों में रखा जाता था, जिनमें जेल के नियमों का उल्लंघन करने वाले बंद किये जाते थे। ऐसी ११-११ कोठरियों वाली पांच बारकें थीं; किन्तु हम लोगों को ऐसी कोठरियाँ दी गई थीं कि जहाँ से हम एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते थे। एक बार मुझे अपने मित्र से नमस्ते करने पर चेतावनी दी गई थी और मेरे 'हिस्ट्री-टिकट' में लिखा था—'दूसरे राजनैतिक क़ैदी से बातें करते पाया गया।'

गर्मी के मौसम में, एक दिन ४ बजे के करीब, जेल बन्द होने से एक घण्टा पहले, अचानक जेलर हमारे पास आया और कहने लगा कि हम सब 'पोलिटिकल' वार्ड के फाटक से दूर वाली एक ही बारक में चले जायँ। हम सब को आश्चर्य हुआ और हमने कल्पनाएँ शुरू कर दीं कि ऐसा हुक्म क्यों हुआ?

यह उन दिनों की बात है जब कि जेलों में खबर मिलना असंभव था। अख़बार पढ़ने को नहीं दिये जाते थे। सुनी-सुनाई बातें और अफ़वाहें मिलकर हमारी 'जेल-गजट' बनती थी। कोई एक

हफ्ता पहले हमारे 'जेल-गजट' ने महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी की खबर छापी थी; किन्तु बाद में केवल यही मालूम हो सका कि उन पर मुक़दमा चलाया जा रहा है।

जब हमें अलग वार्ड की कोने वाली बारक में ले जाया गया, तब हममें से चतुर लोगों ने अनुमान किया कि गाँधीजी को यरवदा जेल में ही लाया जा रहा है। यह अनुमान एक कोठरी से दूसरी और तीसरी तक हवा के झोंके की तरह पहुँच गया, और एक भले वार्डर ने धीरे से इसका समर्थन भी कर दिया कि उसी शाम को गाँधीजी को वहाँ लाया जा रहा है और उन्हें हमारे ही वार्ड के फाटक के दूर वाली बारक में रखा जायगा। तिलक महाराज ने तो राजद्रोह का इल्जाम स्वीकार नहीं किया था; किन्तु गांधीजी ने राजद्रोह का इल्ज़ाम कबूल कर लिया था, पर सज़ा उन्हें तिलक के बराबर यानी छै साल की मिली थी। तिलक महाराज ने राजद्रोह के इल्ज़ाम की सफ़ाई में अपनी सारी विद्वत्ता और कानूनदानी को झोंकते हुए कहा था कि उन्होंने जो कुछ भी कहा और लिखा वह राजद्रोह नहीं कहा जा सकता। किन्तु, इधर गाँधीजी ने कह दिया था कि यह तो उनका साफ़ फ़र्ज़ है कि वे ऐसे राज के ख़िलाफ़ विद्रोह करें, जो अपना विवेक खो चुका है।

हिन्दुस्तानी-जेल में गाँधीजी पहली बार गये थे, किन्तु उनकी यह ख्याति कि वे आदर्श क़ैदी हैं, दक्षिणी अफ्रीका से उनके साथ ही पहुँची थी। उन्हें इसका गर्व भी था। जेल भोगने वाले अपने साथियों के लिए उन्होंने कुछ नियम बाँध दिये थे। किसी ऐसे जेल-क़ानून का उल्लंघन न किया जाना चाहिए, जो धर्म, विवेक या आत्म-सम्मान का विरोधी न हो। जेल-जीवन की सभी असुविधाओं और

कठोरताओं को बिला शिकायत सहन करना चाहिए।

पहले ही दिन जब शाम को उन्हें उनकी कोठरी में ले जाया गया, तो उनके लिए मोटी रोटी और दाल खाने को दी गई। उनकी पाचन-शक्ति के लिए ऐसा भोजन भारी था, अतः उन्होंने उसे न खाया। अगले दिन से उन्हें उनका मन-पसंद सादा भोजन और बकरी का दूध दिया जाने लगा।

उनकी कोठरी सड़क से कोई चालीस गज़ दूर थी। जब कभी हमें जेल-दफ्तर की ओर ले जाया जाता, तब हमको उधर ही से गुज़रना होता था। हम उन्हें नमस्ते करते और वे भी हमें नमस्ते किया करते थे।

हमें कभी-कभी पुस्तकें लेने-देने का अवसर भी मिल जाता था। मुझे याद है कि एक बार मैंने ईसा-मसीह का एक बड़ा ही सुन्दर जीवनचरित्र, उनके किसी 'अज्ञात शिष्य' द्वारा लिखा, गाँधीजी से प्राप्त करके पढ़ा था। और एक दूसरी किताब भी मैंने पढ़ी थी जिसमें कुछ निहत्थे धर्म-प्रचारकों के उस जीवन की मनोरंजक कहानियाँ छपी थीं, जो उन्होंने जंगल के भीतर जंगली रेड इन्डियनों के बीच रहकर गुज़ारी थीं। मैंने गाँधीजी को प्रो० भानु-द्वारा अनूदित उपनिषदों के मराठी अनुवाद की एक प्रति पढ़ने को दी थी।

अपने मित्रों के साथ पहली मुलाक़ात में गांधीजी को दूसरे कैदियों की तरह बड़े फाटक पर ले जाया गया और सीखचों के पीछे ही से बातें करने को कहा गया था। उन्होंने इस तरह की मुलाकात को अपने मित्रों का अपमान मान कर, जेलर से वापस कोठरी में ले जाने को कहा। यह भी कहा कि ऐसी अपमानित करने वाली मुलाक़ात के बजाय वह मुलाक़ात ही नहीं करेंगे। उन्होंने इसके

बारे में सुपरिन्टेन्डेन्ट को लिखा था। परिणाम यह हुआ कि 'पोलिटिकल' कैदियों के लिए नियम ढीले कर दिये गये । इसके बाद हमें अपने इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियों से एक ऐसे कमरे में मिलाया जाने लगा, जिसमें कोई जंगला नहीं था ।

कुछ महीने बाद मेजर जॉन्स यरवदा-जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए । वे अपने पूर्व अधिकारियों की निस्बत राजनीतिक कैदियों के साथ कहीं अधिक हमदर्दी का व्यवहार करने लगे थे । उन्हें गांधीजी से लम्बी-चौड़ी बातें करने का भी बड़ा चाव था । एक बार उन्हें यह सूझा, कि प्रबन्ध में सुविधा और सुरक्षा के लिहाज़ से भी सभी राजनीतिक कैदियों को एक ही वार्ड में, दूसरे कैदियों से दूर रखना अच्छा होगा ।

यूरोपियन वार्ड में ४० कमरे थे और मुश्किल से कुल १०-१२ यूरोपियन और एंगलो-इंडियन कैदी थे, जिन्हें हिन्दुस्तानी कैदियों के मुकाबले में कहीं अच्छा खाना-कपड़ा दिया जाता था ।

एक दिन सुबह के वक्त मेजर जॉन्स आये और गांधीजी से कहने लगे कि वह सब पोलिटिकल कैदियों को यूरोपियन वार्ड में रखना चाहते हैं । गांधीजी ने उनके इस विचार का स्वागत किया, इसलिए नहीं कि हमें वहाँ अधिक आराम मिल सकेगा, बल्कि इसलिए, कि ऐसी तबदीली से, मेजर जॉन्स के प्रबन्ध में, उनकी अपनी राय के अनुसार, आसानी पैदा हो जायगी । इसलिए उसी शाम को हम सब राजनीतिक कैदियों को नये वार्ड में कोठरियाँ दे दी गईं । वहाँ की बात ही दूसरी थी । हमारी पहले वाली कोठरियाँ केवल १० फीट लम्बी और १० फीट चौड़ी थीं और फ़र्श कच्चा ; किन्तु नये कमरे १२ फीट लम्बे और १० फीट चौड़े और सीमेंट के पक्के फ़र्श

वाले थे। इनमें सोने के लिए लकड़ी का तख्त बना था और सर्दी-गर्मी के मौसम के लिए दोहरे दरवाज़े भी लगे थे। छतें अधिक ऊँची, अच्छे रोशनदान और बेहतर सफ़ाई का प्रबन्ध था। हम में से एक बोल उठे—'अरे भई, यह जेल थोड़े ही है, यह तो कालेज के होस्टल में हमें कमरे दिये गये हैं!'

नियत समय पर हमारे दरवाजों पर ताले डाल दिये जाते थे; मगर गांधीजी का कमरा खुला छोड़ा जाता था। उनके साथ यह ख़ास रिआयत थी।

हमने वह दिन बड़े आनन्द में बिताया। हमें खुशी थी कि जेल में गांधीजी हमारे इतने क़रीब हैं।

अगले दिन सुबह, हममें से कुछ लोग गांधीजी के साथ टहलने को गये। एक ने पूछा कि दक्षिण-भारत में अस्पृश्य दल के नेताओं द्वारा किये जाने वाले आन्दोलन के विरोध का क्या उपाय किया जाय? गांधीजी ने उत्तर दिया कि निर्भय और निष्पक्ष रहकर की जाने वाली जन-सेवा, जिसमें मान-इज़्ज़त की भी चाह न हो, अन्त में सब प्रकार के विरोध को समाप्त कर दिया करती है। जवाबी विरोध या जवाबी नुक्ताचीनी से कभी कुछ लाभ नहीं हुआ करता। इसके बाद मैंने उस कड़ी नुक्ताचीनी का ज़िक्र किया, जो दूर चौरी-चौरा में हिंसा हो जाने के कारण बारडोली में कर-बंदी आंदोलन रोक देने के लिए गांधीजी पर की जा रही थी। गांधीजी ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया कि यदि उनके नेतृत्व में आन्दोलन चलना है, तो उनकी शर्तों पर अमल होना लाज़िमी है। उन्हें अपने आन्दोलन की रचना-प्रणाली का दूसरों से अधिक ज्ञान था। उस समय आन्दोलन स्थगित करने से, एक तो उन्हें और भी बल प्राप्त हो गया था और

दूसरे वे अपना आन्दोलन उपयुक्त अवसर आने पर फिर आरंभ करेंगे। ठीक वक्त पर किसी आंदोलन को स्थगित करने में, उसके अंधाधुन्ध चलाते जाने की अपेक्षा कहीं अधिक साहस की ज़रूरत होती है। यह तो आत्म-संयम और अनुशासन का एक पाठ है।

मैंने कहा, कि कुछ व्यक्तियों की राय में, स्थगित किये जाने से विरोधी-आन्दोलन की जड़ ही कट गई है। देश में ऐसी निराशा फैली है, मानो हमें ५० साल पीछे फेंक दिया गया हो। इसके उत्तर में गांधीजी ने आवेश से कहा कि अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन के एक साल में देश ने वह हासिल कर लिया है जो पिछले ३० साल के वैध आन्दोलन के बाद भी उसे नसीब नहीं हुआ था। जनता की चेतना सजग हो उठी है; इस अल्पकाल में, लोगों में जो निर्भयता, जो बल, जो संगठन-शक्ति, जो अनुशस्त रहने की क्षमता और एका पैदा हो गया है, वह ५० साल तक सब्र से दी गई शिक्षा से भी नहीं प्राप्त हो सकता था।

उसी दिन, सुबह ६ बजे के करीब, मेजर जॉन्स अपनी नित्य की गश्त लगाने वार्ड में पहुँच गये। वह कुछ बेचैन से प्रतीत होते थे। सदा की भाँति उनके साथ आधी दर्जन अफ़सर और वार्डर लोग थे। उन्होंने गांधीजी से नमस्ते की और यह पूछा कि नये मकान में उनकी रात कैसी गुज़री? गांधीजी ने उत्तर दिया कि वह यहाँ के वातावरण और अपने साथियों के साथ के कारण बहुत प्रसन्न हैं। मेजर जॉन्स हँसे और कहने लगे—'निश्चय ही आप अंग्रेज़ी सरकार के ख़िलाफ़ साज़िश नहीं कर रहे हैं?' गांधीजी ने भी हँसते हुए तुरन्त जवाब दिया—'जब हम इकट्ठा हैं, तो और क्या करेंगे? मियाँ-बीवी साथ-साथ तो रहें, मगर बातें न करें?'

'हाँ-हाँ, यह तो कुदरती बात है'—सुपरिन्टेन्डैन्ट ने कहा।

'किन्तु'—गाँधीजी ने कहा—'हमारा षड्यंत्र खुला है। हम इकट्ठा रहें या न रहें, यह तो चलता ही रहेगा। आप भी जानते हैं, सब कोई जानता है।'

गांधीजी ने फौरन भाँप लिया कि बेचारा सुपरिन्टेंडेन्ट संकट में है। उन्होंने असली बात बतला देने का उससे आग्रह किया। सुपरिन्टे-न्डेन्ट बोला—'पिछली रात क्लब में, होम मेम्बर ने, राजनीतिक कैदियों को एक साथ रख देने के लिए नाराज़ी प्रकट की है।' इस पर गांधीजी ने बड़ी गम्भीरता से उसी दम कहा—'हम यह कभी नहीं सहन कर सकते कि आप हम से जो भला सलूक करते हैं, उसके लिए आप पर मुसीबत आये। हम अपनी पुरानी कोठरियों में उतनी ही खुशी से लौट जायंगे, जितनी खुशी से आये थे।'

यह सुनकर मेजर जॉन्स को बड़ा सन्तोष मिला और हमें अपनी पहली कोठरियों में भेज दिया गया।

दिन हफ्तों में और हफ्ते महीनों में बदलते गये और अन्त में दिसम्बर १९२२ में मेरी रिहाई का दिन क़रीब आ पहुँचा। मैं यरवदा जेल से निकलने के पहले गांधीजी से मिलना चाहता था। बाहर जो कुछ हो रहा था, उसके सम्बन्ध में मैं गांधीजी की प्रतिक्रिया जानना चाहता था।

अफ़सर लोग ऐसी मुलाकात की इजाज़त नहीं देंगे और गैर-सरकारी तौर पर मुलाक़ात करना शायद गांधीजी को स्वीकार नहीं होगा। वह कड़े अनुशासन के पाबन्द ठहरे। जो हो, रिहाई से पहले एक बार गांधीजी से विदाई-भेंट का भूत मुझ पर सवार हो रहा था। इसलिए मैंने एक कैदी-नम्बरदार के हाथ उनके पास संदेश भिजवाया।

मैंने कहलाया कि मैं दो रोज़ में रिहा होने वाला हूँ, और अगले दिन दो बजे, अपने वार्ड के फाटक के पार तारदार जंगले के पास आप से कुछ देर के लिए बातें करना चाहता हूँ। मेरे आनन्द-भरे आश्चर्य की हद न रही, जब गांधीजी ने मेरी प्रार्थना पर स्वीकृति दे दी।

नियत समय पर, नम्बरदार से सूचना पाकर, गांधीजी अपनी लंगोटी बाँधे हँसते हुए, वहाँ जंगले के पास, मेरे मित्र और मेरे सामने मौजूद थे।

मुझे गांधीजी ज़रूर फटकारेंगे—इस भय से मैं ज़रा घबरा रहा था। मैंने झुककर प्रणाम किया और उनसे पूछा कि ऐसी मुलाक़ात करना क्या भूल है? उन्होंने कहा—यदि जेल के नियम भंग हुए हैं, तो हमें इसकी सज़ा भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए, और क्या! मेरे दिल का बोझ हट गया।

मैंने गांधीजी की गिरफ्तारी और कैद के नौ लम्बे महीनों और बाहर की परिस्थति का ज़िक्र किया और खासतौर पर कुछ कांग्रेसी नेताओं-द्वारा व्यवस्थापिका-सभाओं से प्रतिबंध हटा लेने की माँग की तरफ़ इशारा किया। गांधीजी ने कहा कि उन्हें अपने प्रोग्राम में पूर्ण विश्वास है। ज्यों-ज्यों चर्खा चलाते हैं, वह अनुभव करते हैं कि उन पर अहिंसात्मक-असहयोग के सिद्धान्त प्रभाव करते जा रहे हैं।

गांधीजी अपने आंदोलन के फल से सर्वथा सन्तुष्ट थे और यही अनुभव करते थे कि उनका दिखलाया हुआ रास्ता ही एकमात्र सही है। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि कुछ नेताओं के विरोध के बावजूद देशवासी उनका समर्थन करेंगे। उन्होंने कहा कि वे केवल

एक सिद्धान्तवादी नहीं हैं। उनके तरीके पर अमल करने से देश में जाग्रति, संगठन और एका उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा। जहाँ देश में एकबार एका और संगठन हुआ कि स्वराज्य पीछे-पीछे चला आयगा। अनेक ऐसे नेता जो हिंसावाद में विश्वास रखते थे, अब उनके अनुयायी बन रहे थे, इसलिए नहीं कि अहिंसा में उनका विश्वास हो गया था, बल्कि इसलिए कि उन्हें दूसरा कोई रास्ता ही नज़र न आता था। गांधीजी ने यह भी बताया कि वही शक्ति जो स्वराज प्राप्त करसकती है, चिरकाल तक हिन्दुस्तान में शासन चला सकेगी। 'जो तलवार के ज़ोर से स्वराज प्राप्त करते हैं, उनका विनाश भी तलवार द्वारा हुआ करता है।' तलवार के बल पर प्राप्त किया जाने वाला स्वराज, उनके सपनों का स्वराज नहीं होगा। उन्हें तो ऐसा समाज स्थापित करना है, जिसमें ऊँच-नीच कोई न हो, जहाँ हिंसा और शोषण ला-पता हों।

इसके बाद मेरे मित्र ने, जो मेरे साथ थे छूत-छात की समस्या की चर्चा करते हुए कहा कि यह भावना लोगों में ज़ोर पकड़ रही है कि गांधीजी धर्म को राजनीति में मिलाकर अनर्थ कर रहे हैं। गांधीजी ने उत्तर देते हुए कहा कि जीवन को एकदम नपे-तुले और कसे हुए भागों में विभक्त नहीं किया जा सकता। मेरे ख्याल से ऐसा कह देना गांधीजी के लिए सुगम था। उनका व्यक्तित्व इतना महान् और ऊंचा था कि यदि छूत-छात निवारण के लिए वह कुछ करेंगे भी तो उनके राजनीतिक स्थान और मान की हानि नहीं हो पायगी। किन्तु यदि छोटे कार्यकर्ता छूत-छात के खिलाफ़ काम शुरू करेंगे तो राजनीतिक क्षेत्र से नामधारी ऊँची जाति वाले उन्हें निकाल बाहर करेंगे।

गांधीजी ने तत्काल उत्तर दिया—'इसका तो यही मतलब हुआ कि आपकी छूत-छात के काम में उतनी दृढ़ता नहीं है जितनी कि राजनीतिक कामों में। दृढ़ विश्वास पैदा कीजिए और जिस काम में ऐसा विश्वास हो उसी को आरंभ कीजिए। शेष काम अपने-आप संभलते रहेंगे।'

अन्त में मैंने उनका संदेश माँगा। उन्होंने इनकार कर दिया। बोले—'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।'

इन शब्दों के साथ हमारी १५ मिनट की मुलाकात समाप्त हो गई और पूर्णतया सन्तुष्ट होकर हम अपनी कोठरियों में लौट गये। गांधीजी बड़े प्रसन्न और प्रफुल्ल चित्त दीखते थे। यद्यपि वह यरवदा जेल में बंद थे तथापि उनकी आत्मा पहले से भी अधिक स्वतंत्रता महसूस कर रही थी। ठीक उसी रात को मुझे धारवाड़ ले जाया गया, और बाद में जेल से रिहा कर दिया गया। यह मेरा सौभाग्य था कि मैंने दिन में उनसे भेंट कर ली थी।

रिहाई के बाद, मैंने 'आज महात्माजी के विचार क्या हैं' नाम से अपनी उस संक्षिप्त मुलाकात का एक विस्तृत-सा विवरण प्रकाशित किया था।

* * *

६

कांग्रेस का प्रधान-पद

सब से पहले, सितम्बर १६२० वाले विशेष कांग्रेस-अधिवेशन में, इस संस्था पर गांधीजी का प्रभुत्व जमा था। उसी अधिवेशन में, 'अहिंसात्मक असहयोग' का प्रस्ताव, जिसे अखिल भारतीय खिलाफ़त कान्फरेन्स ने, गांधीजी के निर्देशन और प्रेरणा से ३ मास पहले ही पास कर लिया था, श्री सी० आर० दास, लाला लाजपतराय और पं० मालवीय जैसे अनुभवी नेताओं के विरोध के बावजूद, काफ़ी अच्छे बहुमत से पास हो गया था।

बस तभी से समझिये, उनके देहान्त तक, कांग्रेस पर उन्हीं का निरन्तर सम्पूर्ण प्रभाव बना रहा, जिसे कभी कोई ढीला न कर सका। प्रधान की गद्दी पर कौन बैठा है इसकी कोई बात नहीं; उसके पीछे असली शक्ति गांधीजी ही होते थे। केवल उन्हीं की स्वीकृति प्राप्त करके कोई कांग्रेस के प्रधान का आसन ग्रहण कर सकता था। श्री सुभाषचन्द्र बोस को, जिन्हें १६३८ में प्रधान चुना गया था, गांधीजी का आशीर्वाद प्राप्त न हो सकने से, ३ मास के अन्दर ही गद्दी छोड़ देनी पड़ी थी। इसीलिए उन्हें वर्किंग कमेटी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सहयोग भी न मिल सका। और जनवरी १६४६ तक भी, जब कांग्रेस के प्रधान के चुनाव पर विचार हो रहा था, मेरी गांधीजी से मद्रास में मुलाक़ात हुई थी; उनका यही निश्चय

था कि अगले साल मौ० आज़ाद को प्रधान न चुना जाय, क्योंकि वे १९४० से प्रधान चले आ रहे थे। तो फिर सरदार पटेल मौजूद थे, लेकिन नहीं, यह ज़िम्मेदारी पं० जवाहरलाल पर डाली जानी चाहिए : प्रचंड धारा को वश में लाना चाहिए। और वैसा ही हुआ।

इस प्रकार कांग्रेस में उनका नेतृत्व निर्विवाद था, क्योंकि उनका राजनीतिक विवेक और नैतिक बल महान् था। १९३४ के बाद तो गांधीजी कभी कांग्रेस के चवन्नीवाले सदस्य भी नहीं बने थे, किन्तु कार्यकारिणी की लगभग हर मीटिंग में उन्हें ख़ास तौर पर निमंत्रित किया जाता था। यहाँ तक कि इन मीटिंगों का समय और स्थान चुनते वक्त गांधीजी की सुविधा का ख़याल रखा जाता था। और फिर कांग्रेस सम्बन्धी कोई ज़रूरी प्रश्न ऐसा नहीं होता था कि जिस पर, गांधीजी से आख़ीरी दिन तक उनकी सम्मति न ली गई हो। १९२४ में, गांधीजी से कांग्रेस का प्रधान-पद स्वीकार करा लेने का सारा श्रेय कर्नाटक के माननीय नेता श्रीगंगाधर राव देशपांडे को मिलना चाहिए। बस यहीं एक बार गांधीजी कांग्रेस के प्रधान बने थे। उस साल कांग्रेस का अधिवेशन बेलगाम में हुआ था। यदि गांधीजी तब प्रधान न बने होते, तो हिन्दुस्तान के राष्ट्रपिता और कांग्रेस के निर्माता का नाम, उस महान् राजनीतिक संस्था के माननीय प्रधानों की पंक्ति में न आ सकता।

बेलगाम-कांग्रेस-अधिवेशन अनेक रूप से महत्त्वपूर्ण था। उन दिनों की राजनीति इस संस्था के इतिहास और गांधीजी की 'सत्य की परीक्षाओं' के दृष्टिकोण से, बेलगाम-अधिवेशन गौरवपूर्ण था। गांधीजी ५ जनवरी सन् १९२४ को, उनकी सज़ा की अवधि पूरी होने से बहुत पहले ही छोड़ दिये गये थे, ताकि वे अपने अपैंडीसाईटिस का

ऑपरेशन करवा सकें। उनकी रिहाई के दिन से ही, स्वराज्य पार्टी, जो व्यवस्थापिका सभाओं में जाने पर तुली बैठी थी, अपने प्रोग्राम में गान्धीजी का आशीर्वाद प्राप्त करने की धुन में थी। अन्त में स्वराज्य पार्टी ने गांधीजी की रज़ामंदी हासिल कर ही ली। गांधीजी ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाते हुए रचनात्मक कार्यक्रम पर ज़ोर दिया और तब से बराबर कांग्रेस के रचनात्मक अंग को सुपुष्ट बनाते रहे—यही अंग है जो जनसाधारण से सीधा सम्पर्क पैदा करने-वाला है।

एक और भी महत्त्वपूर्ण बात जो बेलगाम में गांधीजी ने की, वह थी, कांग्रेस के विधान में 'सूतद्वारा मताधिकार' का प्रचलित करना। वह तो, यह शर्त लगाकर कि कांग्रेस का प्रारंभिक सदस्य वही हो सकेगा जो नियत गज सूत अपनी फ़ीस के रूप में देगा। वह कांग्रेस का आधारभूत ढाँचा ही बदल देना चाहते थे। और फिर उन्होंने इस बात पर भी आग्रह किया कि कांग्रेस-कार्य-कारिणी का सदस्य वही बन सकेगा जिसने खुद अपनी ज़िन्दगी में, अदालतों, व्यवस्थापिका-सभाओं, स्कूलों, विलायती कपड़े और सरकारी संस्थाओं आदि का बहिष्कार किया हो। किन्तु ६ मास के प्रयोग के बाद 'सूतद्वारा मताधिकार' ऐच्छिक कर दिया गया, क्योंकि गांधीजी ने जो लक्ष्य क़ायम किया था, उस तक कांग्रेसजन अभी नहीं पहुँच सकते थे।

जहाँ गांधीजी ने 'परिवर्तनवादी' स्वराज्य पार्टी को व्यवस्थापिका-सभाओं में प्रवेश करके भीतरी संग्राम की अनुमति दी, वहाँ उन्होंने 'अपरिवर्तनवादियों' को भी गाँव के जनसाधारण में अधिक रचनात्मक-कार्य करने के लिए सुसंगठित करना शुरू कर दिया। इस प्रकार कांग्रेस के दोनों पक्षों को क़ाबू में रखकर, उन्हें एक-दूसरे पर

झपट पड़ने से जुदा रखना, गांधीजी की राजनीतिक चतुराई का चमत्कार था। उन्होंने अपनी इस चतुराई का प्रमाण बाद में भी अनेक बार दिया था। ख़ास तौर पर, जब-जब उनके वे लाड़ले वापस चले आये, तो गांधीजी ने उनका प्यार-भरा स्वागत किया। इसी से स्पष्ट है कि गांधीजी का प्रभाव और सम्मान कितना सर्वव्यापी था।

रचनात्मक कार्यों में गांधीजी ने सब से ज़्यादा ज़ोर चर्खा और खादी पर दिया। वह खादी-उत्पादन को सूर्य और शेष सब कामों को उसके चारों ओर घूमनेवाले नक्षत्र कहा करते थे। बेलगाम में ही गांधीजी ने सर्वप्रथम उस संस्था का आधारभूत ढाँचा तैयार किया, जो बढ़कर 'अखिल भारतीय चर्खा संघ' कहलाने लगा।

और फिर, डाक्टर हार्डीकर के योग्य नेतृत्व में शिक्षा पाये हुए हिन्दुस्तानी सेवा-दल को, पहली बार इसी बेलगाम में यह दिखलाने का मौक़ा मिला कि यदि उन्हें थोड़ी-सी शिक्षा मिल जाय तो स्वयंसेवक क्या कर सकते हैं। हिन्दुस्तानी सेवा-दल के काम की बहुत सराहना हुई और गांधीजी ने अपने हाथ से पारितोषिक वितरण किया।

झंडा-अभिवादन की रस्म भी बेलगाम-कांग्रेस के अवसर से ही प्रमुख बनी थी। हिन्दुस्तानी सेवा-दल ने इस रस्म के साथ 'राष्ट्र-गगन की दिव्य ज्योति' नाम से एक गान भी जोड़ दिया था। तब से यह रस्म सभी जगह अदा की जा रही है और कांग्रेस स्वयं-सेवकों की शिक्षा का यह आवश्यक भाग है। अब यही वह गान बदलकर 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' हो गया है।

यहाँ मैं, राष्ट्रीय झंडे के विषय पर गांधीजी और डा० हार्डीकर के बीच हुआ छोटा-सा वार्तालाप रखना चाहता हूँ। अभी तक हमारा

झंडा 'फ़ैशनेबुल' नहीं बना था, अतः डा० हार्डीकर ने गांधीजी से प्रार्थना की कि वे अपने आश्रम में यदि उस झंडे को फहराएँ, तो उसका यश, सम्मान – ख़ास तौर पर बढ़ जायगा। गांधीजी ने गम्भीरता से देखते हुए उत्तर दिया—'मैं इस झंडे को अपने आश्रम में तभी फह-राऊँगा, जब कि मैं और मेरा प्रत्येक साथी, इसकी साधारण-सी मानहानि पर अपने प्राण न्योछावर करने को उद्यत होगा। मैं इस झंडे को दिल्लगी नहीं बना सकता।'

डा० हार्डीकर को विश्वास था कि वह दिन आयगा, जब कि इस झंडे की आन की ख़ातिर हज़ारों हिन्दुस्तानी अपना सर्वस्व न्यो-छावर करने को तैयार हो जायँगे।

* * *

७

सविनय अवज्ञा

१६२४ से १६३० तक स्वराज्य-पार्टी ने संगठित रूप से व्यवस्थापिका-सभाओं में सरकार से संग्राम किया। केन्द्रीय सभा में कई बार मुस्लिम-लीग ने भी इसका साथ दिया। दोनों ने मिलकर अनेक बार अँग्रेज़ी सरकार को परास्त भी किया, लेकिन शासन-शक्ति न मिलनी थी, न मिली।

इस बीच, अपने श्रद्धालु सहकारियों के साथ गांधीजी ने देश भर में रचनात्मक कार्यों का जाल बिछा दिया था। इस अंधेरे पक्ष का सब से चमकमा सितारा था बारडोली में सरदार पटेल द्वारा कराया गया कामयाब कर-बँद-आन्दोलन। बात तो साधारण थ ; किन्तु, बारडोली ने यह दिखला दिया, कि हिन्दुस्तान के ग़रीब किसानों को अहिंसावाद के आधार पर संगठित करके सरकार के सामने खड़ा किया जा सकता है और यदि उचित शिक्षा-दीक्षा मिल जाय तो वे अपना धन-जन देकर भी देश के लिए महानतम बलिदान कर सकते हैं। सरकार को अन्त में झुकना पड़ा और भूमि-कर बढ़ोतरी के फैसले पर नज़रसानी करनी पड़ी।

एक ओर व्यवस्थापिका-सभाओं के संग्राम के थोथेपन और दूसरी ओर जनता की बढ़ती हुई निराशा ने मिलकर अँग्रेज़ी सरकार

और उसके न्याय में एकदम अविश्वास पैदा कर दिया।

इस प्रकार, ३१ जनवरी १६२६ की आधी रात को, लाहौर में रावी नदी के किनारे पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन ने, सम्पूर्ण स्वराज्य और अँग्रेज़ों से संबंध-विच्छेद को अपना ध्येय घोषित कर दिया

जनवरी १६३० की २६-वीं तारीख को हज़ारों सभाओं में देश ने आज़ादी की प्रतिज्ञा ली। सामूहिक तौर पर स्वतन्त्रता दिवस मनाये जाते देख गांधीजी उत्साहित हुए, और उन्होंने ६ अप्रेल १६३० को डाँडी समुद्र तट पर नमक-संग्रह द्वारा नमक-कानून को तोड़ कर स्वराज्य के लिए सामूहिक सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का सूत्रपात किया। एक महीने बाद उन्हें अपने कारडी के शिविर में गिरफ्तार कर लिया गया। पर इस अर्से में, आन्दोलन सारे देश में वन की आग के समान फैल गया। यहाँ तक कि स्त्रियाँ और बच्चे भी नमक-कानून तोड़ने में एक-दूसरे से होड़ लगाने लगे।

सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनों में सामूहिक तौर पर कर न देना ही अन्तिम प्रकरण हुआ करता था। गुजरात में बारडोली और कर्नाटक में अकोला ताल्लुके के लोगों ने कर न देने के आन्दोलन का सूत्रपात किया। क्योंकि उन आन्दोलनों का ध्येय राजनीतिक था; इसलिए जब मार्च १६३१ में गांधी-इरविन समझौते पर दस्तखत हो गये, तो उसे भी बन्द कर दिया गया।

कर्नाटक के सिरसी, सिद्दापुर और हिरकेरूर ताल्लुकों में उस साल के अकाल के कारण किसान बड़ी मुश्किल में थे। अतएव उन्होंने सभाएँ कीं, सरकार के पास प्रतिनिधि-मण्डल भेजे और मालगुजारी इकट्ठा करने वाले अफसरों के पास भी उस साल की

मालगुजारी को न लेने की जरूरत पर ध्यान देने के लिए प्रतिनिधित्व किया। पर सरकार ने उनकी कोई सुनवाई न की और मालगुजारी इकट्ठा करने के लिए जबर्दस्त कदम उठाती रही। हठ के कारण सरकार ने सोचा कि किसान राजनीतिक आन्दोलनकारियों द्वारा उभारे गये हैं और दरअसल मुसीबत नहीं पैदा हुई है। गांधी-इरविन समझौते के बाद भी गिरफ्तारियाँ, कुर्की के वारंट, जायदाद और जमीन की जब्ती बड़े भारी पैमाने पर तीनों ताल्लुकों में चलती रही।

किसानों की ओर से गांधीजी से सलाह लेने के लिए मैं नड़ियाद में नियत समय पर मिला।

वह अप्रैल की गर्मियों का कोई दिन था। श्रीभीमभाई नायक के मकान के एक कमरे में दिनभर व्यस्त रहने के बाद गांधीजी मस्तक पर गीला कपड़ा रखे हुए आराम कर रहे थे। अब भी मैं उन दीप्तिमान आँखों का चित्रण कर सकता हूँ, जिन्होंने गीले कपड़े के नीचे से मुझे गौर से देखा और पास बैठने के लिए आमंत्रित किया। मैंने उन्हें किसानों के सभी विस्तृत मामलों से पहले ही सूचित कर रखा था। उन्हें यह सुनकर व्यथा हुई कि अफसर लोग राजनीतिक ध्येय और वास्तविक आर्थिक कठिनाइयों का भेद नहीं समझ पाये। मैंने उन्हें बताया कि किसान लोग सभी दमनकारी क्रियाओं को वीरतापूर्वक झेल रहे हैं; क्योंकि वे संगठित और सुचारु रूप से काम कर रहे थे। सरकार उनकी कमर तोड़ देना चाहती थी। उन्होंने तो केवल उसी साल के लिए मालगुजारी न ली जाने की सुविधा चाही थी। गांधीजी ने हमें पूर्ववत् कार्य करते रहने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि वह इस मामले को ऊँचे अफसरों तक ले जायँगे। वह जानते थे कि

हमारा पक्ष न्याय पर आधारित था और उसके लिए सही और सीधा मार्ग अपनाया गया है।

इसके बाद, मैंने ऐसे ही, बातों-बातों में, गांधी-इरविन समझौते और खास करके उसके शब्दों का जिक्र कर दिया। मैंने बताया कि मेरे विचार से कई स्थानों पर उसके शब्द काँग्रेस के लिए अपमान-जनक थे। गांधीजी थके हुए दीखने पर भी चमक उठे और उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं वास्तव में ऐसा समझता हूँ। उन्होंने मुझ पर विश्वास करते हुए कहा कि समझौते का मसविदा तो उन्हीं का था, लार्ड इरविन ने थोड़े से ही फेरफार किये थे। वह आगे बोले कि चूंकि समझौते का मसविदा तैयार करने की जिम्मेदारी उन्हीं पर डाली गई थी; अतएव उन्हें सरकार की प्रतिष्ठा का खयाल भी रखना पड़ा था। वह दो सरकारों के बीच का समझौता नहीं था—समझौता था सरकार और लोकप्रिय संस्था के बीच। उन्होंने बताया कि केवल दो ही बातों को लार्ड इरविन ने नहीं माना था, पहला था आन्दोलन में कष्ट उठाने वालों की क्षतिपूर्ति करना और दूसरी थी ज्यादतियों के लिए पुलिस को सजा देना। और सभी बातों को उन्होंने, शब्द जो भी रहे हों, मान लिया था। यद्यपि वह एक सम्पादित विषय था, फिर भी उन्होंने मुझे उन विशेष उदाहरणों को बताने को कहा, जिनके कारण मेरा वैसा विचार हो गया था। मैंने यह कहकर बात खत्म कर दी कि यह आम धारणा थी; और आगे बढ़ने का सन्देश लेकर अपने प्रांत को लौट आया। सिरसी, सिद्दापुर के मामले में मुझे एक बार फिर गांधीजी के पास जाना पड़ा। तब वह इलाहाबाद में आनन्द-भवन में थे। डॉ० हार्डीकर भी मेरे साथ थे। सुबह के १० बजे थे। गांधीजी छत पर खुले में बैठे थे। हमेशा की तरह उस समय

भी वह व्यस्त थे और जब मैं पहुँचा तब उन्होंने अखबारों की कतरनों को पढ़कर खत्म ही किया था। मैंने उन्हें दोनों ताल्लुकों के मालगुजारी के अफसरों के साथ पेश हुई दिक्कतों का वर्णन किया और यह भी बताया कि वे अब भी किस तरह से किसानों को परेशान कर रहे थे। उन्होंने सारी बातें शान्ति से सुनने के बाद मुझे लोगों की नैतिकता को ऊँचा रखने को कहा। उन्होंने आशा प्रकट की कि बहुत शीघ्र ही सब कुछ ठीक हो जायगा। उन्हें भी राजस्व अधिकारियों के साथ बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ी थीं और किसानों की दशा जान चुके थे। स्पष्ट है कि लार्ड इरविन के जो भी विचार और जितने भी ऊँचे ध्येय थे, नौकरशाही ने समझौते को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा था और उनमें समझौते की भावना ने प्रवेश नहीं किया था। वे अब भी 'मारने वाले पत्र' से चिपके हुए थे।

बाद में काँग्रेस ने अक्टूबर १६३१ में गांधीजी को अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाकर द्वितीय गोलमेज-परिषद् में भेजा। २८ दिसम्बर १६३१ को वे इँग्लैण्ड से निराश और भ्रान्त होकर लौटे। लौटने पर उनका भव्य स्वागत किया गया और उस शाम को बम्बई के आजाद मैदान में की गई सभा बहुत बड़ी थी। गांधीजी पहले से ही जानते थे कि उनके परिषद् में जाने का कोई फल नहीं निकलेगा। इसी बीच लार्ड इरविन चले गये और लार्ड विलिंग्डन वाइसराय बने। उनके शासन-काल में एक-से-एक बढ़कर प्रतिक्रियावादी तत्वों ने नौकरियों में शक्ति इकट्ठा कर ली थी। गांधी-इरविन समझौते की धज्जियाँ उड़ा दी गईं। गांधीजी के इङ्गलैण्ड का तट छोड़ने के पहले ही कांग्रेस पर आक्रमण की गड़गड़ाहट शुरू हो गई थी। जब तक वे भारत के किनारे पहुँचे,

सीमान्त के बादशाह खाँ और पंडित जवाहरलाल नेहरू बहुतेरे दूसरों के साथ सींखचों के पीछे पहुँचाये जा चुके थे।

कांग्रेस कार्यसमिति तीन दिन तक उत्सुकता से बम्बई में मिलती रही। गांधीजी ने लार्ड विलिंग्डन को तार भेजा, मिलने की प्रार्थना की। बापू हमेशा की तरह विनम्र और छोटे थे। पर वाइसराय ने इस मुलाकात में दमनकारी क्रियाओं पर विचार करने को शामिल करने से भी इनकार कर दिया। अतएव, परिणामस्वरूप कार्यसमिति ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का निश्चय किया। दूसरा कोई रास्ता नहीं था। ३१ दिसम्बर १६३१ को रात को यह फैसला किया गया।

इन व्यस्त दिनों के बीच भी गांधीजी ने कर्नाटक के कांग्रेस कार्यकर्ताओं से बम्बई में ३१ दिसम्बर १६३१ के सवेरे हिन्दुस्तानी सेवादल के दफ्तर में मिलना स्वीकार कर लिया। हम करीब ५० आदमी थे। वह आये और हमारे बीच बैठ गये। संघर्ष आ रहा था—सभी को वायु में उसकी सूचना मिल रही थी। सरकार ने उसे देश पर जबर्दस्ती लादने का फैसला किया और यह सभी जानते थे। गांधीजी ने वहाँ पर मौजूद प्रत्येक आदमी के सामने अपनी कुदरती मुसकराहट बिखेर दी। करीब-करीब हम सब बैठ गये, जिसमें उन्हें ठीक से सुन सकें। उनका इरादा भाषण देने का नहीं था। उन्होंने कहा कि उन्हें मालूम है कि कर्नाटक को उनमें और काँग्रेस में पूरा भरोसा है। उन्होंने बताया कि बड़ा कठिन संघर्ष होगा। वह सुधरने के बाद फिर बिगड़ जाने वाले ज्वर के समान था। फिर उन्होंने पूछा कि क्या आप कोई सवाल करना चाहते हैं।

एक कार्यकर्ता ने पूछा—'क्या आप अब भी विश्वास करते

हैं कि स्वराज अहिंसा से मिलेगा?' उन्होंने तुरन्त जवाब दिया—'जरूर'।

उनका स्वराज—उनके सपनों का स्वराज—केवल अहिंसा से मिल सकता था। हिंसा-द्वारा प्राप्त स्वराज का उनके लिए कोई उपयोग न था। सवाल करने वाले ने पूछा—'क्या इतिहास में किसी भी ऐसे देश का उदाहरण मौजूद है जिसे अहिंसा द्वारा आजादी मिली हो?' गांधीजी यह कहते हुए, उत्साहित हो उठे—'आप भूतकाल के इतिहास की बात क्यों करते हैं? आप देखते नहीं हैं कि हम नया इतिहास बना रहे हैं? यदि आपको भूत के उदाहरण को ही देखना है, तो आप हरिश्चंद्र या प्रह्लाद की कहानियों को लीजिए। क्या ये सब शुद्ध अहिंसा की विजय के जीवित प्रमाण नहीं कहे जा सकते?'

'वे इतिहास में नहीं हैं। ये तो कथायें हैं और नायक भी काल्पनिक हैं' सवाल करनेवाले ने कहा।

पर गांधीजी ने कहा कि ये कथाएँ उनके लिए लिखित इतिहास से कहीं अधिक सत्य हैं।

इस मौके पर मैंने बीच में पड़ कर कहा—'मैं यह बात तो समझ सकता हूँ कि हरिश्चन्द्र की विजय अहिंसा की शक्ति से हुई थी। पर प्रह्लाद की कथा में किस चीज को विजय मिली, वह नृसिंह की हिंसा थी अथवा बालभक्त प्रह्लाद की तपपूर्ण अहिंसा। क्या यह साफ नहीं है कि हिंसा अहिंसा की मदद को दौड़ी और हिंसा की मूर्त्ति हिरण्यकश्यप का उसने ही नाश किया?'

गांधीजी निरुत्साहित नहीं हुए। अहिंसा में उनका विश्वास बड़ा गहरा और अडिग था और उसको कार्यान्वित करने में वे

सच्चाई से जुटे थे। अएतव ऐसे तर्कों से वे डिग नहीं सकते थे। उन्होंने कहा—कथानक को पूरी तौर पर और ठीक-ठीक पढ़ो। हिरण्यकश्यप की मृत्यु केवल बाहरी थी। उसको पुनर्जीवन मिला और सब सुखपूर्वक रहने लगे। अन्त में हिरण्यकश्यप को मोक्ष मिला।

* *

८

गांधी सेवा-संघ

१९३२ और १९३५ के बीच के तीन साल ही ऐसे थे जिनमें कांग्रेस और सरकार के बीच शक्ति की असली परीक्षा थी। सरकार ने दमन की कार्य-पद्धति को पूरा कर लिया था। १९३०–३१ में जो-जो दमन उसने नहीं किये थे और जिनको करने में हिच-किचाहट की थी, १९३२–३४ में बदले की भावना से उसे पूरा किया। गांधीजी और सरदार पटेल को १९३२ में जनवरी के प्रथम सप्ताह में जेल में डाल दिया गया।

१९३३ में गांधीजी अनशन के कारण बाहर आये; पर उन्होंने अपने आप ही व्रत ले लिया कि एक साल तक राजनीति में प्रवेश न करेंगे। उन्होंने अपना सारा समय हरिजन-यात्रा में लगा दिया, इस कार्य के लिए उन्होंने भारत भर का दौरा किया। सरकारी हल्कों में सुना गया कि लार्ड विलिंग्डन को इस विचार से गर्व हुआ कि उन्होंने हमेशा के लिए कांग्रेस को खत्म कर दिया है। अतएव उन्होंने विश्वास के साथ १९३५ में केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव की घोषणा की। यह उनके लिए कितने आश्चर्य की बात रही होगी, जब उन्होंने देखा कि आम सीटों में से ८८ प्रतिशत पर कांग्रेस का अधि-कार हुआ। दमन के बावजूद कांग्रेस अच्छी तरह जीवित थी।

उसने लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदयों में अपनी जड़ जमा ली थी।

गांधीजी ने व्यवस्थापिका-सभा के बाहर के कार्य और चुनी गई संस्थाओं को हमेशा अधिक महत्त्व दिया। पर उन्होंने भी यह मान लिया था कि पार्लियामेण्टरी कार्यक्रम के नाम से पुकारा जानेवाला काम स्थायी हो गया था। उसकी अब और उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। १६३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट के मुताबिक प्रान्तों में आम चुनाव १६३७ में होनेवाले थे। अपने साथियों के साथ लम्बे विचार के बाद उन्होंने कांग्रेस के चुनाव में भाग लेने की सम्मति को मान लिया। कांग्रेस ३ करोड़ मत के लिए हकदार लोगों की उपेक्षा नहीं कर सकती थी। उन्हें भी अपने दायरे में रखना था। यदि मैं भूला नहीं हूँ, तो राजाजी ही वह व्यक्ति थे, जिन्होंने यह निश्चित तर्क किया, जो उनको ठीक जँच गया।

यद्यपि गांधीजी ने व्यवस्थापिका सभा के कार्य को मान लिया था, तथा उन्होंने उससे बाहर रचनात्मक-कार्य को करने के लिए अपना जोर देना नहीं छोड़ा। अतएव खास करके श्री जमनालाल बजाज के जोर देने पर गांधी-सेवा-संघ का संगठन किया गया। हालाँकि सारे प्रयत्न गांधीजी के ही थे। रचनात्मक क्षेत्र के सभी सफल कार्यकर्ता उसमें शामिल हो गये। संघ को निश्चित रूप देने के सवाल पर १६३५ में किसी समय विचार करके यह निश्चय किया गया था कि विभिन्न स्थानों और प्रान्तों में वार्षिक सभाएँ की जायँ। उस मौके पर कार्यकर्ता भी एक सप्ताह तक साथ रहकर आपस में विचार-विमर्श कर सकेंगे।

सेवाग्राम में सत्याग्रह और अहिंसा की परिभाषा पर दिलचस्प तर्क-वितर्क किये गये। गांधीजी ने सत्याग्रह की परिभाषा बतलाने से

इन्कार किया। उन्होंने कहा कि उसकी परिभाषा नहीं दी जा सकती ; क्योंकि वह उत्तरोत्तर वृद्धि पर था। हमने सुझाया कि सत्याग्रह का मतलब अहिंसा के जरिये सत्य की अधिकाधिक खोज रखा जाय। पर गांधीजी को उससे संतोष थोड़े ही होना था। उन्होंने कहा कि वह तो बहुत अनिश्चित हो जायगा। उनको तब तक सन्तोष न होगा, जब तक कि अहिंसा की पूर्ण आकृति और रूप, जिसमें वह कार्यान्वित होनी थी, परिभाषा और संघ के ध्येयों में शामिल नहीं कर ली जाती। अन्त में उन्होंने हमेशा की तरह अपना ही रास्ता अपनाया और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, आसनग्रह, शरीराश्रय, आस्वाद, भयवर्जन, सर्व-धर्म, सामन्तन, स्वदेशी, स्पर्शभावना और व्रतों को सत्याग्रह की परिभाषा और संघ के उद्देश्य में शामिल किया।

अहिंसा के उपयोग के बारे में मैंने सुझाया कि यह निषेधार्थक प्रत्यय है जैसा कि 'प्रेम' या 'दान' नहीं है। मैंने 'प्रेम' शब्द के उपयोग पर जोर दिया। यद्यपि पहले तो उन्होंने मेरी बात को मान लिया ; पर बाद में जोरों से निषेध किया। उन्होंने कहा कि 'प्रेम' शब्द काफी अच्छा और मीठा है ; पर उसका मूल सहयोग, वासना या काम से है। उन्होंने तर्क किया कि हमारा पशुस्वभाव हिंसा में प्रवृत्त रहने से हमें अपनी साधना हिंसा से दूर रहने में करनी है। अहिंसा केवल देखने में निषेधार्थक है ; क्योंकि उसका निश्चित परिणाम एक निर्विवाद प्रवृत्ति है। उन्होंने इस शब्द का उपयोग तीस साल तक किया था, अब गांधीजी के निर्धारित कार्य से, जिसे वह उसका अंग समझते थे, कितने ही विचारों का उस शब्द के घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था।

गांधीजी के तर्क का कभी विरोध नहीं किया जा सकता

था। तथापि १६३५ में गांधी-सेवा-संघ के विधान में जो संशोधन किया गया, उनमें ये शब्द 'जिसमें प्रेम भी शामिल है' अहिंसा के आगे ब्रैकट में दिखलाये गये हैं।

गांधी-सेवा-संघ की पहली बैठक १६३६ में महाराष्ट्र के खादी-उत्पादन-केन्द्र सेवाली में बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। वहाँ पर हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों से आये हुए कार्य-कर्ताओं ने एक अजीब अनुभव प्राप्त किया। गांधीजी भी वहाँ थे ही, वह प्रत्येक दिन पूरा एक घन्टा शंका-समाधान करने और सवालों का जवाब देने में लगाया करते थे। यह स्वयं एक शिक्षा थी।

वह पूँजी बनाने वाली रकम के खिलाफ थे। उन्होंने कहा कि कार्यकर्ता को सहायता देने वाली असली रकम तो लोगों का विश्वास और शुभ कामना थी। संघ के लिए रचनात्मक कार्यक्रम ही विश्वास की वस्तु थी। सत्य और अहिंसा को केवल नीति नहीं मानना चाहिए और न उसके साथ खिलवाड़ा करना ही ठीक था। वह तो संघ की साँस के समान थीं।

काँग्रेस चाहे उनमें से एक या दोनों को ही क्यों न छोड़ दे; पर संघ तो मेरे बगैर ऐसा नहीं कर सकता था। यदि संघ अपने आदर्शों के अनुसार रहा, तो वह सत्याग्रह के अन्तिम कार्य-क्षेत्र यानी रचनात्मक कार्य के सर्वोच्च स्थान तक पहुँच सकता है, जो उसे अटल प्रभाव के साथ सविनय अवज्ञा करने की शक्ति प्रदान करेगा।

व्यवस्थापिका सभा के बारे में उन्होंने कहा कि ऐसी सभाओं में जो कार्य हो, वह गाँवों के वास्तविक कार्य का पूरक हो। गांधी-सेवा-संघ के सदस्यों के लिए यही अच्छा होगा कि वे व्यवस्थापिका सभा में प्रवेश न करें और न कांग्रेस में ही शामिल हों, बशर्ते कि ऐसा

करने से वे आपसी प्रतियोगिता और कडुआहट को दूर रख सकते हों।

१९३७ में गांधी-सेवा-संघ की बैठक फिर हुडली में हुई। इस सभा में कई महत्त्वपूर्ण निश्चय किये गये। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण सवाल, जिस पर विचार किया गया, यह था कि क्या गांधी-सेवा-संघ के सभासद कांग्रेस और दूसरे चुनावों को लड़ सकते हैं? बड़े सोच-विचार के बाद 'एक अनुमतिकारी प्रस्ताव' स्वीकृत कर लिया गया।

एक और महत्त्वपूर्ण सवाल था, प्रान्तों में मंत्रि-पद ग्रहण करनें का। गांधीजी ने हुडली में एक नुस्खा निकाला। उन्होंने कहा कि यदि प्रान्तों के गवर्नर यह घोषणा कर दें कि वे मंत्रि-मंडल के दिन-प्रति-दिन के शासन में दखल नहीं देंगे, तो कांग्रेस का पद ग्रहण करना उचित होगा। तीन महीने से भी ज्यादा समय तक यह वाद-विवाद चलता रहा और अन्त में गांधीजी का नुस्खा ही थोड़े फेर-फार के बाद स्वीकृत कर लिया गया और गवर्नरों के कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के कार्य में दखल न देने का सज्जनोचित समझौता हो गया। इस प्रकार कांग्रेस ने दिखा दिया कि वह मृग-मरीचिका के समान सत्ता को कभी ग्रहण न करेगी और न अपने पद के कानूनी कार्यों में ही कोई दखल बर्दाश्त कर सकेगी।

हुडली में उनके ठहरने के अन्तिम रोज हमने किसानों की एक विशाल सभा का आयोजन किया; पर अभाग्यवश वह सफल नहीं हो सकी; क्योंकि भीड़ का ठीक से प्रबंध न हो सका था। अगले दिन उन्हें उस जगह को छोड़ देना था। मैंने रात को दस बजे उनकी कुटिया में प्रवेश किया और देखा कि वे अपने आप उसे साफ करके अपना बिस्तरा लगा रहे हैं। कुटिया में और कोई न था। मैंने उनके हाथ से दरी

को बिछाने के लिए ले लिया। उन्होंने मेरी ओर देखा और मुस्करा दिये। मैंने बिस्तर लगाने में उनकी मदद की और उनसे विदा हुआ। क्योंकि अगले दिन मुझे सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ हुडली रवाना होना था।

उसके बाद संघ की सभा वर्षों तक होती रही और अन्तिम बैठक बंगाल के मलिकांदा स्थान में हुई। १६३६ में एक तरह से संघ को भंग कर दिया गया। कुछ नेताओं को यह सन्देह हो गया कि गांधीजी के शिष्य गांधी-सेवा-सघ का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में कर रहे हैं। बापू किसी भी प्रकार यह कहा जाना पसन्द नहीं करते थे कि संघ के नाम का उपयोग और कामों के लिए हो रहा है। क्योंकि संघ के सभासद चुनावों में हिस्सा लेने की अनुमति प्राप्त कर चुके थे; अतएव देखा गया कि कई जगह तो वे एक-दूसरे के खिलाफ़ चुनाव लड़ रहे थे। इस कारण उनमें आपसी होड़ और ईर्ष्या-द्वेष ने घर कर लिया। अतएव बापूजी ने संघ को भंग कर देने का बुद्धिमत्तापूर्ण निश्चय किया। **जिसने संस्था की स्थापना की थी, उसे ही उसको तोड़ने का भी अधिकार था, जब कि वह संस्था अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पा रही थी।** १६४८ में उनके सिवा और कोई नहीं कह सकता था कि 'कॉंग्रेस को ही भंग करो।'

* * *

९

स्रष्टा कलाकर

१९३७ के, चुनावों में कांग्रेस की भारी बहुमत से जीत हुई। उसने ग्यारह में से सात प्रान्तों में, जो हिन्दुस्तान का दो-तिहाई भाग था, सत्ता स्वीकार की। पर कांग्रेस ने मुश्किल से २० महीने जीन कसी थी कि १९३९ में द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया और हिन्दुस्तान को व्यवस्थापिका सभा और उसके नेताओं के दिखाऊ हवाले के बगैर भी युद्ध में खींच लिया गया। कांग्रेस-मन्त्रि-दलों ने, सभी प्रान्तों में यह कहकर इस्तीफा दे दिया कि वे ऐसे युद्ध को कोई सहायता देने के लिए बाध्य नहीं किये जा सकते, जो उनकी मंजूरी के बगैर घोषित किया गया है।

इस प्रकार एक संकट-काल उत्पन्न हो गया। गांधीजी सभी लड़ाइयों से घृणा करते थे। न तो उनको सहानुभूति अँग्रेजों के साथ थी और न जर्मनों के साथ; पर इन दोनों के बीच उन्होंने यह साफ घोषणा कर दी थी कि उनका झुकाव अँग्रेजों और उनके मित्र राष्ट्रों की ओर है। वे अँग्रेजों को नैतिक समर्थन देने के पक्ष में थे; पर सामान की जबर्दस्ती ली गई सहायता के विरुद्ध थे। फिर भी ऐसे दुश्मन को झंझट में डालना, जो परम संकट में हो, उनके सत्याग्रह की नियमावली के प्रतिकूल था। अतएव इस उलझी हुई परि-

स्थिति के लिए उन्होंने १६४० के अक्टूबर में 'व्यक्तिगत सविनय-अवज्ञा आन्दोलन' का सूत्र-पात किया।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा को सत्य के साथ अपने अनुभव की कहानी का नाम दिया है। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण शीर्षक और किसी पुस्तक का नहीं हो सकता है। उनकी जिन्दगी को भी 'अहिंसा के साथ एक अनुभव' या इससे भी उत्तम 'अहिंसा के द्वारा सत्य या ईश्वर की खोज का एक अनुभव' का नाम दिया जा सकता है। गांधीजी के अनुसार सत्य और हिंसा कभी एक साथ नहीं चल सकते। वे हिंसा के साथ समझौता करने को कभी तैयार नहीं थे। उनकी सारी जिन्दगी अहिंसा से बुराई का सामना करने के लिए विचित्र उपाय खोज निकालने में ही बीती। इस प्रकार से सत्याग्रह का विज्ञान और कला उन्नति कर सके हैं।

उन्होंने कई बार यह मंजूर किया कि वे प्रकाश नहीं पा रहे हैं, उनके चारों ओर अँधेरा है और वे अँधेरे में भटक रहे हैं। उनका यही मतलब था कि कुछ समय से वे अहिंसात्मक हल नहीं पा रहे हैं। पर वे अपने इस विश्वास से कभी नहीं डिगे। कि प्रत्येक मुसीबत और प्रत्येक समस्या का एक अहिंसात्मक हल है। वे भले ही अपने अपूर्ण साधन होने के कारण रास्ता या हल नहीं निकाल सके हों।

१६४० की बात लीजिए। गांधीजी ने यह निर्धारित किया कि केवल उनके द्वारा अनुमति-प्राप्त सत्याग्रही ही मजिस्ट्रेट को समय और स्थान की सूचना देंगे। जब कानून की अवज्ञा के रूप में वे दो वाक्य जो उन्होंने बनाये थे दुहरायेंगे जिनमें कहा गया था—'अँग्रेजों

के युद्ध-साधनों को आदमी या पैसे से मदद करना गलत है। अहिंसा ही सब लड़ाइयों का सामना करने का सर्वोत्तम रास्ता है।'

जो सत्याग्रही गिरफ्तार नहीं किये गये, उन्हें यह सलाह दी गई कि वे पैदल ही उनके सन्देश और नारों-द्वारा प्रचार करते दिल्ली की ओर आगे बढ़ें। गांधीजी ने व्यवस्थापिका सभाओं और चुनी हुई संस्थाओं के प्रतिनिधियों को इस प्रकार सत्याग्रह करने का आदेश दिया। जो अपनी सजा भोगने के बाद छोड़ दिये जाते थे, उन्हें सत्याग्रह को फिर दुहराना पड़ता था और इस प्रकार के उदाहरण भी मौजूद हैं, जिनमें लोग साल में चार-चार बार जेल गये।

इस सत्याग्रह को शुरू करने के एक महीने बाद, नवम्बर १६४० में, मैं अपने प्रान्त की कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के साथ वर्धा गया। हमारा ध्येय था कार्य-प्रणाली को और भी अच्छी तरह समझ लेना। कुछ दूसरे प्रान्तो के प्रतिनिधि भी वहाँ थे।

असल में गांधीजी ने तब के गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथगो से इस आन्दोलन को शुरू करने के पहले कुछ पत्र-व्यवहार किया था। लिनलिथगो ने व्यक्तिगत तौर पर लोगों को युद्ध में मदद करने से इंकार करने की पूरी आजादी देने की बात मान ली थी। पर वे ऐसे दिली विरोध करने वालों को पर प्रभाव डालने की आज्ञा नहीं दे सकते थे। पर गांधीजी ने कहा कि दूसरों को प्रभावित करने का अधिकार भी मिलना चाहिए। यदि कांग्रेस बिल्कुल साफ लफ्जों में अपने विश्वास की घोषणा नहीं करती, तो वह उसके लिए आत्म-हत्या करने के समान होगा।

उस रोज जब हम उनसे उनकी कुटी में मिले, तो वह कात रहे थे। कर्नाटक के लिए उनके दिल में हमेशा जगह थी।

उन्होंने हमारा स्वागत किया। वह यह देखकर खुश हुए कि हमारे प्रान्त की उप-प्रधान एक महिला श्रीमती कृष्णाबाई थीं। श्री महादेव भाई पास ही बैठे गांधीजी की सभी बातों का नोट ले रहे थे।

हमने अपने प्रान्त के सत्याग्रहियों की प्रथम सूची उनकी देख-भाल के लिए पेश की और कार्य-प्रणाली को अपनाने के बारे में उनकी साफ आज्ञा माँगी। छान-बीन के बाद उन्होंने हमारी सूची को मान लिया। ज्यों-ज्यों हमारी बातें होती गईं, हमने उनसे कई प्रश्न पूछे। 'यदि आप गिरफ्तार हो गये, तो क्या होगा?' हमने पूछा, तो वे बोले—उन्हें विश्वास है कि वे गिरफ्तार नहीं होंगे। सरकार चाहती थी कि वे बाहर रह कर कांग्रेस की गति को रोकते रहें। हमने पूछा कि आन्दोलन का उपयोग ही क्या है, जब युद्ध प्रयत्नों को रोकने की दृष्टि से वह पिस्सू-दंश के समान भी नहीं है। उन्होंने समझाया कि प्रतिकार सामग्री के विचार से नहीं; पर पूर्णतया नैतिक विचार से किया जा रहा था और असल इससे कोई मतलब नहीं कि में प्रयत्नों को रुकावट पहुँची या नहीं। हमने कहा कि शायद सरकार लोगों को सजा देने की बजाय अनिश्चित काल तक नजरबन्द रखना ही पसन्द करे। उन्होंने व्यंग किया—इससे तो लोग फिर सत्याग्रह करने की तकलीफ से बच जायँगे।

उनकी धारणा ठीक निकली, वे अन्त तक नहीं पकड़े गये। सरकार ने दिसम्बर १९४१ में सभी बन्दियों को छोड़ दिया और जापानी आक्रमण की सम्भावना से आन्दोलन को पुनर्जीवित नहीं किया गया।

इस प्रकार व्यक्तिगत रूप में ३० हजार से अधिक लोगों ने सत्याग्रह

किया था। उनमें ११ कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्य, १७६ अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य, २२ केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य और २६ प्रान्तों के भूतपूर्व मन्त्री और ४०० प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य थे।

***

१०

'भारत-छोड़ो'

१६४२ का 'भारत-छोड़े' आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व का अन्तिम सामूहिक आन्दोलन था। मार्च १६४२ में क्रिप्स-द्वारा स्वीकृति के लिए उपस्थित किये गये प्रस्तावों को अस्वीकृत करना पड़ा। पर सामूहिक आंदोलन के अलावा कोई दूसरा रास्ता अपनाने के लिए कोई भी तैयार न था। दूसरा कोई रास्ता था भी नहीं।

जिसे भारत के अन्तिम भविष्य और भारतीय जनता के अपने आपको सम्भालने की शक्ति में दृढ़ विश्वास न था, वह 'भारत-छोड़ो' जैसे आन्दोलन को बात सोचने की हिम्मत कैसे कर सकता था। युद्ध तब भी चल रहा था और जापानियों के भारत के दरवाजे पर पहुँचने की बात कही जा रही थी। भारतीय नेताओं को स्वयं ही उसकी शक्यता और औचित्य में सन्देह था। केवल गांधीजी ने प्रति सप्ताह 'हरिजन' में अपने लेखों-द्वारा जनता में यह भावना भरी कि वह ठीक समय पर शान्तिपूर्ण विद्रोह कर सके। उनके खिलाफ जाने की किसी की हिम्मत न हुई और सरकार उनके आंदोलन की क्षमता और उसकी तह का विस्तार तुरन्त न माप सकी। तीन महीनों के भीतर ही देश सामूहिक आन्दोलन के लिए तैयार हो गया। अन्त में

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने गांधीजी के निश्चय पर अपनी छाप लगाने के लिए, ७ और ८ अगस्त को बम्बई में अपनी बैठक की।

उस महान् अवसर पर, जिस विशाल मंडप में भारत के चुने हुए अहिंसक योद्धा ब्रिटिश सरकार के साथ अपने अन्तिम युद्ध की घोषणा करने के हेतु इकत्रित हुए थे, गांधीजी मंडप में अपनी हमेशा की मुस्कराहट के साथ बैठे थे। उनके चारों ओर उनके सभी पुराने सहयोगी बैठे थे। उस समय संवाददाता वहां सबसे अधिक थे और उनकी संख्या ८०० थी। मंच के सामने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के २५० सदस्य, एक के बाद दूसरी कतार में, अपनी जिम्मेदारी को पूर्णरूप से समझते हुए विस्तार में बैठे थे। उनके पीछे और चारों ओर जनता का महान समूह उस महान्तम बैठक के फैसले को देखने के लिए इकट्ठा हुआ था।

"भारत छोड़ो प्रस्ताव में कहा गया था—'देश में ब्रिटिश-राज को खत्म करना बहुत महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक प्रश्न है, जिस पर युद्ध का भविष्य और आजादी एवं प्रजातंत्र की सफलता निर्भर है।.........

"अतएव आज के खतरे के कारण भारत की आजादी और ब्रिटिश-राज की समाप्ति आवश्यक हो गई है.........

"अतएव अखिल भारतीय कांग्रेस समिति पूरे जोर के साथ भारत से ब्रिटिश-राज के हटाने की माँग को दुहराती है...

"अतएव समिति निश्चय करती है कि हिन्दुस्तान की आजादी और मुक्ति की रक्षा के अविच्छेद्य अधिकार के लिए, अहिंसात्मक मार्ग पर, विशाल पैमाने पर सामूहिक आन्दोलन चलाने की अनु-

मति दी जाय, जिससे देश २२ वर्षों से एकत्रित शान्तिपूर्ण आन्दोलन की समस्त अहिंसात्मक शक्ति का उपयोग कर सके। ऐसा आन्दोलन अवश्य ही गांधीजी के नेतृत्व में होना चाहिए और समिति उनसे नेतृत्व ग्रहण करके राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए पथ-प्रदर्शन करने की प्रार्थना करती है......

'आजादी की इच्छा रखने और उसके लिए प्रयत्न करने वाले प्रत्येक हिन्दुस्तानी को स्वयं अपना पथ-प्रदर्शक बन कर उस विकट मार्ग पर बढ़ना है, जिसमें विश्राम की जरा गुंजाइश नहीं।'

गांधीजी ८ अगस्त को हमारे सामने मंच पर बैठे थे। हमारे एक मित्र को आन्दोलन होने की हालत में—जो अब बिल्कुल निश्चित था—गांधीजी से कर्नाटक के लिए संदेश लेने की बात सूझी। हम उनके पास गये। वे बिल्कुल दृढ़ जान पड़ते थे। भविष्य में सरकार के साथ होने वाले संघर्ष के बारे में उन्हें कोई सन्देह नहीं था। गम्भीरता की मुद्रा से सन्देश उन्होंने हिन्दी में लिखा—'मेरी उम्मीद है कि इस यज्ञ में कर्नाटकी पूरा हिस्सा देंगे।' वे कर्नाटकी लोगों को भलीभाँति जानते थे। वे यह भी जानते थे कि जो कुछ शब्द उन्होंने लिखे हैं, वे हमारे प्रान्त में उनके अनुयायियों पर मंत्र का काम करेंगे। वे जानते थे कि वे लोगों को महानतम बलिदान के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। आजादी की कीमत तो चुकानी ही होगी।

उस मध्याह्न में वह महान् प्रस्ताव पेश किया गया और तत्परता से उसका समर्थन भी हुआ। इस अवसर की गम्भीरता पण्डित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषणों में और भी गम्भीर बन गई। मौलाना आजाद ने सभापतित्व किया। उस

रोज जो लोग पंडाल में हलके चित्त होकर आये थे, वे उस प्रयास और विचारों की गम्भीरता को समझने लगे। देश को अपनी समस्त एकत्रित अहिंसात्मक शक्ति दम्भी और अत्याचारी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ लगाने को कहा गया था। यह अवसर तब चरम सीमा को पहुंच गया, जब गांधीजी ने १० बजे अपना भाषण शुरू किया। नेतृत्व शब्दों में उन्होंने सारी परिस्थिति का वर्णन किया। उन्होंने लार्ड लिनलिथगों के साथ अपने सम्बन्धों का मार्मिक जिक्र किया। वे नम्र पर दृढ़ थे। उनके भाषण का स्वर धीरे-धीरे तीव्र हो गया और उसका अन्त 'करो या मरो' का आदेश देकर हुआ, जिसका आशय था कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी अगले दिन से अपने को आजाद समझे। इस प्रोत्साहन से देश के लाखों लोगों के उत्साह में जो वृद्धि हुई सरकार की संगठित शक्ति के सामने असहाय मालूम देते थे।

गांधीजी के शब्द हिन्दुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँजने लगे और समुद्र पार कर ब्रिटिश सरकार के कानों तक भी पहुँचे। रात में सब शान्त मालूम दिया। पर ब्रिटिश सरकार की नौकरशाही शक्ति ने हिन्दुस्तान में इस चुनौती को स्वीकार कर लिया था। सवेरे ४ बजे से ही कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं की सारे हिन्दुस्तान में गिरफ्तारी शुरू हो गई। वे सब चुपके से जेल ले जाये जा रहे थे। अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति के एक नेता को तो गांधीजी के भाषण के दो घंटे बाद रात को १२ बजे के लगभग जेल ले जाये जाने का उदाहरण मौजूद है।

उस ८ अगस्त की रात को, जब मैं अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति से लौटा, तब मैंने अनुमान किया कि १९३२ के समान, जब गांधीजी और सरदार पटेल ४ जनवरी के तड़के ही एक आर्डीनेन्स द्वारा

गिरफ्तार किये गये थे, सरकार जल्दी ही कदम उठायेगी। पर हम निश्चित होकर सोये।

सवेरे टेलीफोन के तार निर्जीव थे। सड़क पर मैंने गांधीजी की गिरफ्तारी की खबर देने वाले अखबारों में मोटा शीर्षक देखा। कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्य श्री शंकररावदेव, जिनके साथ मेरा मिलने का समय नियुक्त था, लापता कर दिये गये थे और यही हाल बम्बई के प्रमुख कार्यकर्ताओं का था।

मुझे कुछ सूझा नहीं कि क्या करूँ, किससे मिलूँ; पर एक बात का मैंने तुरंत निश्चय किया। वह था—अपने आपको और अपने दोनों मित्रों को अपने मेजवान के घर से हटा लेना यही हमारे ठहरने की जगह थी, जहाँ सरकार हमें पाने की उम्मीद कर सकती थी। हमने अनुभव किया कि गांधीजी का सन्देश अपने लोगों तक ले जाने के लिए, गिरफ्तार होने के पहले अपने घरों तक पहुँच जायँ।

उसके बाद जो कुछ हुआ, वह हमारे इतिहास का हिस्सा है। यद्यपि अनेक वर्णन अब भी करने हैं। आमतौर पर यह विश्वास किया जाता था कि गिरफ्तार होते ही गांधीजी गिरफ्तारी के विरोध में मृत्युपर्यंत उपवास शुरू कर देंगे। वर्धा में तर्क-वितर्क पूरे नहीं हो पाये थे। गांधीजी के अनुसार सत्याग्रही नम्बर एक, श्री विनोबाजी भावे ने गिरफ्तार होने पर मृत्युपर्यंत उपवास करने का निश्चय किया। पर बापू ने हम सब को बता दिया था कि जल्दबाजी में वे ऐसा कोई तीव्र कदम नहीं उठायेंगे। वह, कस्तूरबा और महादेव देसाई के साथ सुरक्षित तौर पर पूना के आगाखाँ-महल में रख दिये गये। कार्य-समिति के सदस्य अहमदनगर के किले

में भेज दिये गये। और दूसरे जो लोग, गांधीजी को ले जाने वाली गाड़ी में थे। पूना के यरवदा जेल ले जाये गये।

इन गिरफ्तारियों से यह सामूहिक आन्दोलन उग्रतर हो गया और उसने वर्तमान अत्याचारी सरकार कई जगह हफ्तों और महीनों के लिए बेकार कर दिया था। लोग गांधीजी द्वारा वर्णित सरकार की, सिंह की-सी हिंसा का सामना करने को तैयार हो गये थे।

* * *

११

गुप्त कार्यकर्त्ता

२२ महीने—अगस्त १९४२ से मई १९४४ तक—गांधीजी पूना में आगाखाँ-महल में कैद रखे गये। अपनी गिरफ्तारी के एक सप्ताह बाद ही उन्होंने अपने विश्वासपात्र सेक्रेटरी महादेव देसाई को खोया। फिर उन्होंने अपनी परम-भक्त पत्नी और अपनी जीवन-साथी कस्तूरबा को खोया। यहीं उन्होंने अपनी शक्तिभर उपवास भी किया। इसी काल में नींबू के रस से उनका जीवन बचाया गया। उनकी दुखित आत्मा देश के प्रति की गई हिंसा एवं स्वयं उनके अनुयायियों द्वारा की गई हिंसा की मूक गवाह थी।

फरवरी १९४३ में इस उपवास के समय लोगों का प्रतिकारी आन्दोलन साधारणतया कर्नाटक और बंगाल आदि के कुछ हिस्सों को छोड़कर, जहाँ वह काफी अर्से तक जीवित रखा गया था, धीमा पड़ गया था। कर्नाटक में वह जीवन अथवा व्यक्तिगत जायदाद को हानि पहुँचाने के कलंक से साफ बच गया था।

गांधीजी ने कभी किसी ऐसे आन्दोलन की स्वीकृति नहीं दी, जिसमें जायदाद को भी नुकसान पहुँचाया जा सके। क्योंकि वह जानते थे कि वह लोगों के साथ हिंसा करने की भूमिका होगी, चाहे वह अपनी रक्षा के लिए हो, अथवा बदला लेने के लिए हो। इसमें सन्देह नहीं कि सेवाग्राम और दूसरी जगहों पर भी इस बात पर

गांधीजी से विचार-विमर्श हुआ था कि तारों का काटना और पटरियों का हटाना, आज्ञा पाने योग्य था अथवा नहीं। यह बात अधूरी रह गई थी। यद्यपि गांधीजी अपने इस विश्वास में दृढ़ थे कि सत्याग्रही को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जो चोरी से किया गया हो।

आगाखाँ-महल में उनके उपवास के दिनों में मैंने एक भूमिगत के नाते, किसी साधन द्वारा उनसे सम्पर्क स्थापित किया। मैंने उन्हें कर्नाटक में अपनी गति-विधि बताई जब कि एक ओर उन्होंने हमारे प्रान्त में जिन्दगी अथवा जायदाद के प्रति किसी भी हिंसात्मक कार्य-वाही के अभाव की सराहना की, दूसरी ओर उन्होंने यह भी बता दिया कि वह ऐसे कार्य पसन्द नहीं कर सकते। उन्होंने कहा कि वह सारे आन्दोलन को एक कर देना पसन्द करेंगे, जिनमें व्यक्ति और दल अथवा गाँव खुले तौर पर अपने आपको आज़ाद घोषित करके गिरफ्तार अथवा हमला किये जाने के लिए खुला छोड़ दें।

गांधीजी के उपवास के कुछ समय बाद भूमिगत कार्यकर्ता दो श्रेणियों में विभाजित हो गये। मैं उस दल में था, जिसने एक 'सत्याग्रह कौन्सिल' का निर्माण पुराने सत्याग्रह के अनुसार 'खुले तौर पर अहिंसात्मक प्रतिरोध' का संगठन करने के लिए किया।

इसी अर्से में गांधीजी के उपवास के कारण जो खिड़की कुछ सप्ताहों के लिए खुली रखी गई थी, पुनः बन्द कर दी गई और लोगों का 'खुला' या 'भेदपूर्ण' प्रतिरोध कम असर डालनेवाला और धीमा होने लगा।

मई १९४४ में गांधीजी रिहा कर दिये गये। वे थकावट और बुरे स्वास्थ्य के साथ निकले। मित्रों द्वारा वे तुरंत बम्बई में जूहू के समुद्र-तट पर ले जाये गये, जहाँ वे कुछ हफ्तों तक श्री शान्तिकुमार की कुटीर में रहे।

हम सत्याग्रह कौन्सिलवाले, जो अब भी भूमिगत थे, उनके साथ सम्पर्क स्थापित करके उनकी सलाह लेने के लिए बड़े उत्सुक थे।

श्री जी० रामचन्द्रन् ने हमारे मिलने का समय ले लिया और श्री आनन्दबाबू और मैं एक रोज सुबह बापू से मिलने जूहू पहुँचे।

खुली छाया में वे चरखे के साथ बैठे थे। वे पीले पड़ गये थे और स्वास्थ्य खराब हो गया था। जैसे ही हम उनके सम्मुख पहुँचकर श्रद्धा से नतमस्तक हुए, वे मुस्कराये और बोल उठे—'सभी भूमिगत हो।' हम बैठ गये और उनके साथ आधे घंटे तक रहे। हमने उन्हें परिस्थिति समझाई और अपनी रिपोर्ट पेश की। हमने उनसे पूछा कि क्या सत्याग्रह की कार्यवाही चलती रहे और सत्याग्रह कौन्सिल अपना कार्य करती रहे ? उन्होंने कहा कि उन्हें काम जारी रखना चाहिए। पर वे किसी भी परिस्थिति में हमारे भूमिगत रहने का समर्थन नहीं कर सकते। वे हमें आत्म-समर्पण करने की 'आज्ञा' भी नहीं देंगे।

हमने श्रीमती सरोजिनी नायडू से भी भेंट और बातचीत की, जो उन दिनों गांधीजी की पालक और द्वार-रक्षक थीं। हमने प्यारेलालजी से भी विचार-विमर्श किया।

७ मई १९४४ को गांधीजी को एक लम्बे पत्र में मैंने भूमिगत कार्यकर्ता के रूप में अपनी स्थिति साफ करने की कोशिश की, जिसमें मैंने उन परिस्थितियों और मनोविज्ञान को बताने की कोशिश की, जिनके कारण मैं अब भी भूमिगत कार्यकर्ता बना रहा। मैंने यह भी लिख दिया कि अब मेरे सत्याग्रह करने और अपने साथियों का उदाहरण अपनाने का समय आ गया है।

उन्होंने तुरन्त जवाब दिया—"तुम्हारा पत्र बहुत अच्छा है। तुम भी सही हो और मैं भी, दोनों अपने ही तरह के हैं। अतएव तुम्हें

वही करना चाहिए, जो तुम्हारे दिल और दिमाग को ठीक जचे। मैंने अब दूसरों को उनके काम के लिए दोष न देना सीख लिया है यदि वह काम दिल से होता है जैसे कि तुम्हारे और बहुतेरे साथी कार्यकर्ताओं का है। तुम मेरा दृष्टिकोण जानते हो। उसे अपनी रौशनी के मुताबिक मापो और तदानुसार काम करो। मुझसे आज्ञा की आशा मत करो, खास करके तब, जब मैं रोग-शैय्या पर हूँ।

१८. ५. १९४४ प्यारा बापू।"

यह जवाब एक काम आये हुए लिफाफे के दूसरी ओर पेन्सिल से लिखा गया था।

गुप्तता की सत्यता के सन्देह के बारे में आनन्दबाबू और मैंने प्यारेलालजी के मार्फत उनको सम्बोधित करके लिखा, जिसके जवाब में ६ वीं जून १९४४ को उन्होंने लिखा।

'गुप्तता' मेरे विचार में, पाप और अहिंसा का चिन्ह है; अतएव उससे दूर रहना चाहिए खास करके ऐसी अवस्था, में जब कि करोड़ों मूक लोगों की आजादी उसका मकसद है। अतएव मेरे विचार से सभी भूमिगत क्रिया निषिद्ध है। फिर भी मैं कहता हूँ कि हिंसा अथवा अहिंसा का समावेश, चाहे वह नीति हो या विश्वास हो, प्रत्येक व्यक्तिगत कार्यकर्ता के दिल या दिमाग की प्रेरणा के अनुसार ही निश्चित किया जाना चाहिए। और जब दिल और दिमाग का संघर्ष होता है, दिल ही जीतता है।

मैं आन्दोलन के नेता की हैसियत से कुछ नहीं कह रहा हूँ, अब भी मुझे बन्दी ही समझना चाहिए। जिसे केवल राय देने की आजादी है, न कि आदेश देने की।

अगस्त १९४४ के अन्त में मैंने बापू को सूचित किया कि मैं खुले तौर पर सत्याग्रह करने का इरादा रखता हूँ।

तब वे पंचगनी में थे। उन्होंने मजाक में मुझे सन्देश भिजवाया कि मैं पंचगनी जाकर उनके सामने प्रकट होऊँ जिससे सरकार द्वारा मेरी गिरफ्तारी पर ५ हजार रुपयों का इनाम का दावा वे हरिजन फंड के लिए भेंट कर सकें। यहाँ मैं उनके दोनों सन्देशों को उद्धृत करता हूँ।

पहला सन्देश

पंचगनी,
१६-६-१६४४

भाई दिवाकर,

मैं सारी बातें नहीं पढ़ पाया हूँ (१६४२-४४ में कर्नाटक के प्रतिरोध कार्य की रिपोर्ट मेरा विचार पहले से ही जानते हो।

यदि तुम सब (कर्नाटक में हम ५० लोग थे) कुछ करते हुए ६ अगस्त को उस रोज तक गिरफ्तार कर लिये गये, तो मैं उसका स्वागत करूँगा। लक्ष्य यह है कि कार्य साधारण कांग्रेस-कार्य हो, न कि सत्याग्रह।

क्या हमने अन्तर समझ लिया है?

बापू के आशीर्वाद।

दूसरा सन्देश

पंचगनी,
२०-७-१६४४

भाई दिवाकर,

कल मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा है। पुण्डलीकजी भी यहीं हैं। अतएव मैं तुम्हें दूसरा पत्र लिख रहा हूँ। इससे जाहिर है कि मैं इन बातों को कितना गम्भीर समझ रहा हूँ।

मैं अनुभव करता हूँ कि जो छिप कर काम कर रहे हैं, वे पहले बाहर आ जायँ, उसके बाद ही वे अपनी इच्छानुसार कार्य में रत हों।

मैं यह चाहता हूँ, कि जब तक मैं बाहर रहूँ कोई उल्लंघन का कदम न उठाया जाय।

बापू के आशीर्वाद।

मैंने इन पत्रों की नकल सभी मित्रों के पास भेज दी, क्योंकि इनमें बापू जी ने हमें आदेश दिया था।

अगस्त १९४४ की ८ ता० के सुबह मैं हुडली के प्लेटफोर्म पर पचास पुलिसवालों के बीच से होकर, जो मेरे आने का इन्तजार कर रहे थे, बगैर पहिचाने गये उतरा। मैं घर गया और अपनी बुढ़िया माता से मिला।

अगले दिन मैं 'संयुक्त कर्नाटक' के दफ्तर में इस प्रकार गया, मानों कुछ हुआ ही न था। वहाँ से मैंने पुलिस थाने पर सन्देश भिजवाया और इस प्रकार अपने आपको 'जाहिर' किया। मैं गिरफ्तार कर लिया गया और एक साल तक हवालात में रखा गया।

* * *

१२

कांग्रेस के हाथ में सत्ता

ब्रिटिश-सरकार ने इस बात पर जोर देकर कि कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य, जो जेल में थे, यह स्वीकार कर लें कि 'भारत छोड़ो' आन्दोलन एक गलती थी और १९४२ में जो कुछ भी हुआ, वे ही उसके जिम्मेदार थे, कांग्रेस को नीचा दिखाना चाहा। पर कार्य-समिति अडिग रही। मई १९४४ से गांधीजी बाहर ही थे। वे हमेशा के समान समझौते और सहयोग की भावना से पूर्ण थे। केवल सरकार के मूल सिद्धान्तों के मानने की देर थी। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा; क्योंकि उन्होंने देख लिया कि जनता के समर्थन के बगैर हिन्दुस्तान का शासन करना असम्भव था। कार्यसमिति के सदस्य रिहा कर दिये गये और शिमला में २५ जून १९४५ को गांधीजी और समिति के साथ समझौते की बात शुरू हुई।

हमें इस धूर्ततापूर्ण समझौते की बातों में जाने की जरूरत नहीं है, जिसमें मुस्लिम-लीग ने दूसरों को हानि पहुँचा कर अपने हित की बात पर ही अड़ंगा लगाया। आखिरी नतीजा निकला देश का विभाजन और विभाजित हिस्सों की ब्रिटिश जुए से आजादी। गांधीजी विभाजन के खिलाफ थे; अतएव जून १९४७ के शुरू में लार्ड माउन्ट-बैटन के अन्तिम प्रस्तावों के कार्यसमिति-द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर, तीन दिनों तक गांधीजी ने अपने दुःख को दिल्ली की

प्रार्थना-सभाओं में प्रकट किया। ५ जून १९४७ को उन्होंने अपने प्रार्थना-भाषण में उपवास की ओर भी इशारा किया। वे खुले तौर पर वास्तविक बातें कह रहे थे। उन्होंने कहा—"क्या मैं देश की कार्य-समिति के खिलाफ विद्रोह करने को कहूँ?" पर अन्त में उन्होंने होने वाली घटना से अपने आपका समझौता कर लिया। क्या ही अच्छा होता, यदि उनकी इच्छाएँ पूर्ण हो जातीं और विभाजन नहीं होता। पाकिस्तान ने समस्याओं को सुलझाने के बेजाय और समस्याएँ पैदा कर दी हैं।

हिन्दुस्तान का जहाज साम्प्रदायिक चट्टान से टकरा कर दो बनावटी टुकड़ों में विभाजित हो गया। इससे गांधीजी को हद से ज्यादा दुःख हुआ। साम्प्रदायिक एकता के लिए हिन्दुस्तान में वह अपने जीवन के शुरू से ही कोशिशें करते रहे; पर वही एकता उनके अन्तिम दिनों में उनकी आँखों के सामने टुकड़े-टुकड़े की जा रही थी।

सितम्बर १९२४ में उन्होंने दिल्ली में २१ दिनों तक हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए उपवास किया था। अब उन्होंने देश में साम्प्रदायिक घृणा को साफ-साफ बढ़ते देखा और उसके खिलाफ युद्ध करने का निश्चय किया। नोआखाली में उनका चार महीने तक पर्यटन, बिहार में रुकना, कलकत्ते में उपवास, दिल्ली में १३ से १६ जनवरी तक उनका अन्तिम उपवास—ये सब हिन्दुस्तान पर साम्प्रदायिक घृणा और उसके मनोवैज्ञानिक कारणों से होने वाले जख्मों की पूर्ति के इरादे से किये गये थे। ९ दिसम्बर १९४६ को नई दिल्ली में जब विधान-सभा का उद्घाटन किया जा रहा था, गांधीजी मुसलमानों के क्रोध में उजड़े नोआखाली के रास्तों पर पैदल चल रहे थे। वे मुसलमानों को उनके द्वारा जलाये गये और नष्ट किये गये मकानों को फिर से बनाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे

थे। बाद में बिहार में, जहाँ हिन्दुओं ने बदला लिया, उन्होंने उन्हें मुसलमानों की क्षतिपूर्ति करने को कहा। उनके लिए मानवीय-हृदयों को साफकर उनमें प्रेम के कोमल बीज बोना, केवल राजनीतिक स्वराज की स्थापना से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण था।

यहाँ मैं १६३८ में गांधी-सेवा-सेना की सभा में हुए एक तर्क-वितर्क की याद दिलाता हूँ। श्री जमनालालजी ने पूछा कि गांधी-सेवा-संघ का सदस्य सरकार का मंत्री और विशेष करके कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाला गृह-मंत्री बन सकता है या नहीं? मैंने कहा कि आधुनिक शासन में गृह-मंत्री को अनेकों बार संगीन की नोक पर और शायद हिंसात्मक भीड़ में से कुछ निर्दोषों को गोली मार कर कानून और व्यवस्था कायम करना होगा। मैंने कहा कि यह टाला नहीं जा सकता। गांधीजी ने कहा कि ऐसी नाजुक हालत में या तो संघ की सदस्यता से इस्तीफा दे देना चाहिए अथवा मंत्रि-पद से। देश में ऐसी हालत पैदा करना, कि ताकत का उपयोग हर तरह से टाला जा सके, यही संघ का मकसद था और वह ताकत चाहे कितनी ही थोड़ी क्यों न हो, उसके द्वारा मकसद पूरा नहीं हो सकता था।

मुझे याद है मैंने दिल्ली में एक रोज गांधीजी से पूछा था कि विधान-परिषद्-द्वारा निर्मित किये जाने वाले विधान में वे कोई दिलचस्पी क्यों नहीं ले रहे हैं। उनका जवाब विशेषता-सूचक था। उन्होंने कहा कि वे और कामों में व्यस्त थे और जब तक विधान निर्माण करने वाले उनकी सलाह न माँगें, वे दखल देने की इच्छा नहीं रखते।

१५ अगस्त १६४७ के दिन, कांग्रेस के हाथ में सत्ता आने के साथ-साथ गांधीजी का दुःख भी दस गुना बढ़ गया। जब मैंने उनका

ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि साम्प्रदायिकता, घूँसखोरी और चोरबाजारी बढ़ गई है और हम उनके शक्ति के विकेन्द्रीयकरण के आदर्श से दूर होते जा रहे हैं, तब उन्होंने जवाब दिया, 'मैं जानता हूँ,' और गम्भीरता से आगे बोले—'जवाहर और सरदार वीरता से युद्ध कर रहे हैं। वे हमारे पूरे सहयोग और सहानुभूति के हकदार हैं।'

* * *

१३

अन्तिम झलक

सौभाग्य से बापू की जिन्दगी के अन्तिम दिनों में मुझे उनसे मिलने के कई सुअवसर मिले। यहाँ पर मैं तीन अधिक महत्वपूर्ण अवसरों का वर्णन करूँगा।

बम्बई के श्री डी० जी० तेन्दुलकर, जो गांधीजी के जीवन पर सुन्दर और प्रामाणिक पुस्तक लिखना चाहते थे, बापू से इस सम्बन्ध में मिलना चाहते थे। २२ जनवरी १९४८को २ बजे नियत समय पर हम साथ-साथ बिड़ला-हाउस पहुँचे। गांधीजी को उपवास तोड़े अभी मुश्किल से ४ दिन हुए थे। वे पूर्ववत् अपनी चौकी पर कमजोर अवस्था में बैठे थे और हमने कष्ट देने के लिए उनसे क्षमा माँगी। उनका व्यवहार बड़ा मृदुल रहा। उन्होंने श्री तेन्दुलकर द्वारा लिखे जाने वाले जीवन-चरित्र में बड़ी दिलचस्पी दिखाई। श्री तेन्दुलकर ने उनसे उनकी पुस्तक 'हिन्द-स्वराज्य' के लिखे जाने की तारीख पूछी और बापू की पुस्तकों में से उद्धरण लेने की आज्ञा चाही। उहोंन्ने प्रार्थना स्वीकार करली। श्री तेन्दुलकर ने पूछा कि क्या वे श्री महादेव भाई की डायरी का उपयोग कर सकते हैं? बापू ने कहा कि वे प्रसन्नता पूर्वक मंजूरी देंगे; पर अन्तिम फैसला श्री नरहरि भाई के ऊपर छोड़ा, जिनके पास वह डायरी थी।

तभी श्री प्यारेलाल आये और बापू के पास बैठ गये।

जैसे प्यारेलालजी के आने से एकाएक बापू को याद आया और उन्होंने मुझे श्रीकृष्ण और यादवों की कहानी सुनाने को कहा, जो आपस में ही लड़े थे। मैंने कहा कि जहाँ तक कहानी मुझे मालूम है, यादव बहुत घमण्डी और दम्भी हो गये थे। श्रीकृष्ण को शक हुआ कि यदि प्रस्थान करने के पहले वे विनष्ट नहीं कर दिये गये, तो संसार का ही नाश कर देंगे। उनके कुल-पुरोहित गर्गमुनि ने उन्हें श्राप दे दिया था कि वे आपस में ही लड़कर समाप्त हो जायँगे। श्राप पूरा हुआ। तब श्रीकृष्ण के संसार से प्रस्थान करने का समय आया। वे एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में बैठे थे। एक शिकारी को उनके हिरन होने का सन्देह हुआ और उसने उनके तलुए पर बाण चला दिया, जिसके कारण उनका निर्वाण हुआ।

बापू ने कहानी को ध्यान से सुना और बोल उठे—'ओह, क्या ऐसा ही था?' मैंने सोचा कि वे अपनी जिन्दगी में कांग्रेसवालों के आपस में लड़ने की बात सोच रहे हैं।

बापू के साथ मेरी अगली भेंट २४ जनवरी १६४८ को हुई, जब कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष अपने साथियों के साथ भाषावार प्रान्त के निर्माण के बारे में उनसे मिल रहे थे। हमने प्रार्थना की कि प्रान्त और प्रान्त में कोई भेद नहीं माना जाना चाहिए और सभी भाषावार प्रान्तों का निर्माण उचित अवसर पर शीघ्र ही एक साथ होना चाहिए।

गांधीजी ने जोर दिया कि जहाँ तक सीमा का सवाल है उसका निर्धारण क्रमशः पड़ोसी प्रान्तों के प्रतिनिधियों के आपसी समझौते पर निर्भर है। उन्होंने इस आशय की बात बहुत पहले हरिजन में कही थी।

मैंने तर्क किया कि वह तो पूर्णावस्था की सलाह है और

समझौते के न होने पर हमें पंच के फैसले का आश्रय लेने की अनुमति मिलनी चाहिए। फिर भी वह अडिग रहे। मर्मस्पर्शी शब्दों में उन्होंने घोषणा की—'दिवाकर, यह नहीं होगा। मैं कहता हूँ तुमसे। उन्होंने समझाया कि पंच का फैसला भी जबरन लादना साबित होगा। कोई भी दल उसको हृदय से नहीं मानेगा। यदि हम ईमानदारी के साथ शान्ति-पूर्वक रहने का इरादा रखते हैं, तो संघर्ष निश्चय ही टालना होगा।

बापू के साथ मेरी तीसरी अन्तिम भेंट २८ जनवरी १९४८ को हुई, जब हमने कांग्रेस के नव-विधान के बारे में विचार किये।

अक्टूबर १९४५ के समय से गांधीजी ने मुझे कांग्रेस की विधान उप-समिति में रखा था; क्योंकि मैंने अगस्त और सितम्बर १९४५ में, अपने जेल से छूटने के बाद गांधीजी के साथ उस विषय के तर्क-वितर्क पर बड़ी दिलचस्पी दिखाई थी।

उप-समिति का पुनर्निमाण, अप्रैल १९४८ में अखिल-भारतीय-कांग्रेस-समिति को रिपोर्ट पेश करने के पहले तीन बार हुआ और मुझे हर बार उस में काम करने का अवसर मिला। जिस विधान की हमने सिफारिश की थी, वह स्वीकृत हो गया और अब सक्रिय है। वह हमारा अन्तिम मसविदा था, जिसे मैंने बनाया था और जो २८ जनवरी १९४८ को, गांधीजी की हत्या के दो दिन पूर्व, उनके साथ विचार-विमर्श का विषय बना था।

गांधीजी अपने हमेशा के, नई दिल्ली के बिड़ला भवन के कोने वाले कमरे में, हिम-श्वेत खादी पहने बैठे थे। उनके सामने ही एक छोटी मेज थी। वह सूखे फलों, कच्ची सब्जियों और बकरी के दूध का नाश्ता कर रहे थे। वह मेरे साथ होने-वाली बात में ऐसे तल्लीन थे कि विचार-विमर्श होने तक भी नाश्ता पूरा नहीं हो पाया।

एक बार तो श्री शंकररावदेव ने उन्हें उसकी याद भी दिलाई। गांधीजी हँस पड़े और टमाटर व कच्चे साग का रायता खाते हुए बोले 'देखते नहीं हो, मैं बैलों के समान कच्ची चीजें खा रहा हूँ!'

हमारी समिति के सदस्य श्री टंडनजी ने विचार-विमर्श में औरों से अधिक हिस्सा लिया। डा० राजेन्द्रप्रसाद भाग लेनेवाले न होकर केवल दर्शक के रूप में ही थे। श्री देव, श्री जुगलकिशोर और मैंने गांधीजी से उस विषय पर पहले ही बात कर ली थी और उनके विचारों से अवगत थे। डा० पट्टाभि और श्री० एस० के० पाटिल बहुत कम बोले। यह साफ था कि गांधीजी का दिमाग हमारे दिमाग से अलग कार्य कर रहा था। राजनीति को अलग रखकर सेवा की भावना से रचनात्मक-कार्य पर जुट जाना ही उनका लक्ष्य था। हम सभी कांग्रेस से अशुद्धता और घूसखोरी--जो सत्ता लेने के साथ ही उसमें घुस आई थी—दूर करने की सोच रहे थे; पर राजनीतिक संस्था के रूप में हम अब भी कायम रहना चाहते थे। एक मौके पर मैंने कहा-'कांग्रेस चौराहे पर खड़ी है। या तो उसे राजनीति में ही रहना चाहिए या फिर पूरी लग्न से रचनात्मक-कार्य में जुट जाना चाहिए।' उन्होंने भर्त्सना की--'यदि कांग्रेस ने रचनात्मक-कार्य को छोड़ दिया या उसकी अवहेलना की, तो यह आत्महत्या होगी।'

विचार-विमर्श कई घण्टों तक होने के बाद बापू से मसविदा ही देने की प्रार्थना की गई। मैंने टीका की कि वे करीब-करीब वही बातें कर रहे हैं जो सितम्बर १९४६ में पहली बार विधान-उपसमिति के साथ सोदपुर आश्रम में मिलने पर की थीं। मैंने उस मसविदे को जो उन्होंने मुझे दिया था उनके पास भेजने की बात कही। उन्होंने उसका स्वागत किया।

सौभाग्य से मसविदा मेरी फाइल में था और मैंने उन्हें मूल

को, जो हिन्दी में था उसके अनुवाद के साथ उसी मध्याह्न को भेज दिया। उससे उन्हें मदद मिली होगी; क्योंकि सेवक या लोक-सेवक के जो गुण १९४६ में बताये गये थे, वे ही अपनी मृत्यु के चार घंटे पूर्व उन्होंने देश को दिये गये अपने अन्तिम विवेचन, मसविदे में अक्षरशः दुहराये हैं।

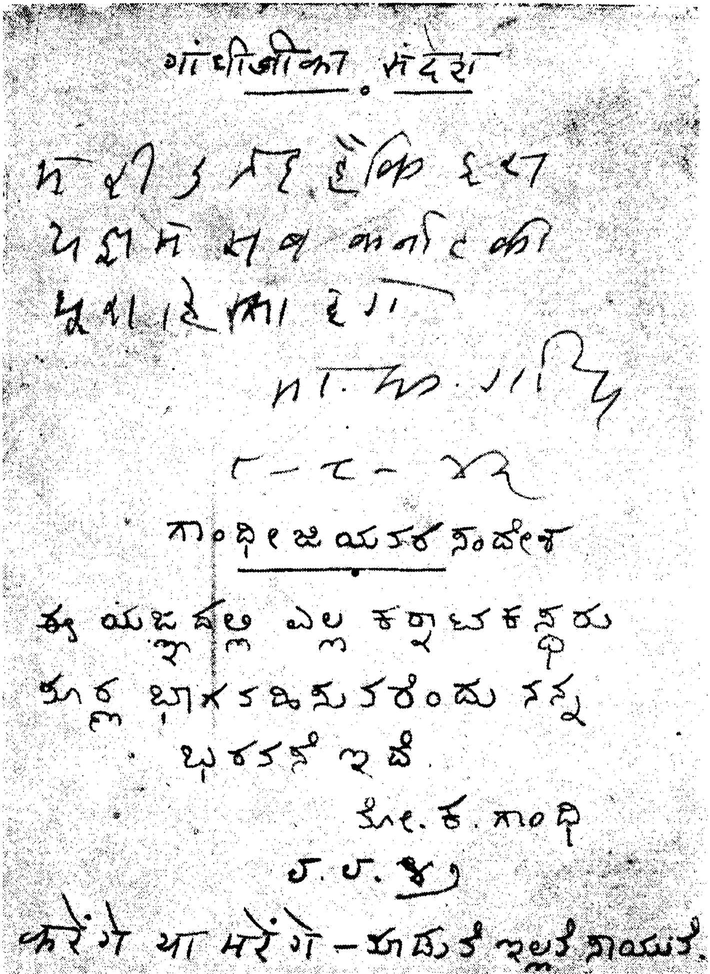
उनकी यह साफ राय थी कि राजनीतिक संस्था के रूप में भारतीय-राष्ट्रीय-महासभा को भंग कर दिया जाय। उन्होंने एक ऐसी संस्था की कल्पना की, जो सेवा की भावना से कार्य कर सके और अपने सेवकों को प्रत्येक गाँव में रचनात्मक-कार्य पूरा करने के हेतु भेज सके। सम्भवतः, उन्होंने सोचा कि जहाँ तक राजनीतिक दलों का सम्बन्ध है, वे अपने-आप स्थान-परिवर्तन कर सकते हैं। जिस प्रकार उन्होंने समग्र ग्राम-सेवा को महत्त्व प्रदान किया, उससे जाहिर है कि वे ऐसे सेवक अपनाना और तैयार करना चाहते थे, जो अपने ठोस नैतिक विकास से राजनीति और चुनाव की गति पर भी प्रभाव डालने के योग्य हो सकें।

यद्यपि वे कांग्रेस के राजनीतिक दल के रूप में कायम रहने के विरोधी थे, तो भी यदि वे जीवित रहते, तो वर्तमान परिस्थिति में किसी ऐसे कदम को उठाने से—जो राजनीतिक दायरे में एक शून्य-स्थान बना देता—टालने के लिए उन्हें मना लिया जा सकता था।

गांधीजी ने कांग्रेस का क्रमिक विकास किया और आज हम उसका यह विस्तार देख रहे हैं। उन्होंने उसके विधान और कार्य-पद्धति को प्रजातांत्रिक बनाया, यहाँ तक कि १९४२ में उसके आरम्भिक सदस्यों की संख्या एक करोड़ के ऊपर पहुँच गई। सात लाख गाँवों में रचनात्मक-कार्य पर जोर देने पर, वे लोग भी जो उसके दायरे में नहीं गिने जाते थे, ग्राम-समितियों के कार्य-कर्ताओं

के साथ, जो उस संस्था ने उप-विभागों में फैला रक्खे थे, प्रत्यक्ष सम्पर्क में लाये गये। पर जब उन्हें यह पता चला कि इस पौधे को, जिसका उपकार करके उन्होंने शाखाओं वाला वृक्ष बना दिया है, रोग पकड़ चुका है और उसकी उपयोगिता अपेक्षाकृत अधिक काल तक जीवित दिखाई देती है। तब उन्हें उसका नाश करके उसके स्थान पर वर्तमान-काल के लिए उपयोगी दूसरे पौधे के लगाने की सिफारिश करने में भी हिचकिचाहट नहीं हुई।

हममें से जिन लोगों को उनके साथ घनिष्ठता रखने का शुभावसर मिला था, उन्होंने देखा कि कई बार उनकी तर्कशैली उनके निश्चयों के साथ मेल नहीं खा सकी। फिर भी वह तर्कशक्ति निर्दोष थी, क्योंकि वह उनके अचूक सहजज्ञान द्वारा अपनाई जाती थी। उनकी दिमागी विचित्रता का एक उदाहरण देते हुए एक बार डॉ० पट्टाभि ने कहा था कि पालतू कबूतरों को उनकी आँखें बन्द करके खुले आकार में पाल दिया जाता है। उन्होंने यह भी बताया था, कबूतरों का एक जोड़ा जो कि कलकत्ते से मद्रास लाया गया था और उसे वहाँ छोड़ दिया गया था, ऊपर उड़कर चारों ओर मँडराने लगा, जब तक कि उनके सहजज्ञान ने उन्हें सीधे और बगैर गलती किये कलकत्ते के वायु-मार्ग की ओर उड़ने की प्रेरणा दी। इसी तरह गांधीजी विचारों में जिस तरह निमग्न रहते थे, और फिर वाणी द्वारा उन्हें जिस प्रकार प्रकट करते थे, उसे देख-सुनकर उन लोगों को भी आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता था, जो उन्हें अच्छी तरह जानते और समझते थे।


गांधीजीका संदेश

मेरी उम्मीद है कि इस युद्धमें सब कर्नाटकी पूरा हिस्सा लेंगे।

मो. क. गांधी

८-८-४२

ಗಾಂಧೀಜಿಯವರ ಸಂದೇಶ

ಈ ಯುದ್ಧದಲ್ಲಿ ಎಲ್ಲ ಕರ್ನಾಟಕದವರು ಪೂರ್ಣ ಭಾಗವಹಿಸುವರೆಂದು ನನ್ನ ಭರವಸೆ ಇದೆ.

ಮೋ. ಕ. ಗಾಂಧಿ

೮. ೮. ೪೨

करेंगे या मरेंगे - ಮಾಡುವೆ ಇಲ್ಲವೆ ಸಾಯುವೆ.

- ಗಾಂಧೀಜಿ

बापू का कर्नाटक के नाम सन्देश, ८ अगस्त १९४२

પંચગની
20-7-44

ભાઈ દિવાકર,

[illegible]

[illegible]